दक्षिण में रामकथा

डा० भीमसेन निर्मल

दक्षिण में रामकथा

सम्पादक-मण्डल

भीमसेन 'निर्मल'
विजयवीर विद्यालंकार
एन० पी० कुट्टन पिल्लै

दक्षिणांचलीय साहित्य समिति, हैदराबाद की ओर से

प्रकाशक
आन्ध्र प्रदेश हिन्दी प्रकाशन मंदिर, हैदराबाद.

दक्षिण में रामकथा

प्रथम संस्करण : १९७४ ई.

प्रकाशक :
आन्ध्र प्रदेश हिन्दी प्रकाशन मंदिर
(आर्य समाज मंदिर के सामने)
सुल्तान बाज़ार, हैदराबाद-५००००१

मुद्रण :
दक्षिण भारत प्रेस
खैरताबाद, हैदराबाद-५००००४

DAKSHIN MEIN RAMKATHA

Edited by :
Bhimsen Nirmal, Vijayaveer
Vidyalankar N. P. Kuttan Pillai

मूल्य : १२-५०

अपनी ओर से

भारतीय जनमानस को अत्यधिक रूप से प्रभावित करनेवाले इतिहास-ग्रंथों में रामायण का विशिष्ट स्थान है। यह ग्रंथ भारतीय संस्कृति का मानो दर्पण है। भारत की प्रादेशिक भाषाओं में यह कथा अनेक रूपों में संप्राप्त है। भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि पर प्रादेशिक संस्कृतियों के विकास क्रम का मूल्यांकन करने के लिए रामकथा का अध्ययन विशेष उपादेय सिद्ध होगा। अर्थात् सांस्कृतिक और सामाजिक वैशिष्ठ्य के गंभीर अध्ययन तथा साहित्यिक स्तर पर भावात्मक समैक्य की साधना के लिए रामकथा ही एकमात्र साधन है।

दक्षिणांचलीय साहित्य समिति ने यह अनुभव किया कि विश्वभर में जब मानस-चतुश्शती मनाई जारही है, यह काम तभी पूर्ण होगा जबकि समन्वयवादी तुलसी के व्यापक दृष्टिकोण को महत्व देते हुए दक्षिण में प्रचलित रामकथा को भी ज्ञानपिपासु उत्तर भारतीय सुविज्ञों के समक्ष प्रस्तुत किया जाए। चाहे उत्तर के हों चाहे दक्षिण के, सभी रामकाव्य तो—

विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे।
हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते ॥

रा. मानस, उत्तरकाण्ड, १२२ (ग)

प्रस्तुत पुस्तक में, तुलनात्मक अध्ययन का प्रयास न करते हुए, दक्षिण की चार भाषाओं की रामकथा की मौलिक विशेषताओं का उद्घाटन करने वाले ग्यारह निबंधों का संग्रह किया गया है। इस क्षेत्र में भारत भर में यह पहला प्रयास है।

प्रथम लेख पूर्वपीठिका के रूप में है। रामकथा के मूलस्रोत

को वेदों में ढूंढ़ने के प्रयास की निरर्थकता की ओर इंगित करते हुए विद्वान् लेखक ने वाल्मीकि के काव्य को ही रामकथात्मक समस्त साहित्य का आधार तथा रामायण का मूल महर्षि वाल्मीकि का वह उदात्तभाव शोक माना है जो श्लेक में परिणत होकर रामायण के रूप में निबद्ध हुआ है।

द्वितीय लेख में, संक्षेप में, तेलुगु साहित्य के विपुल रामकाव्य का परिचय देने का प्रयास किया गया है। स्थानाभाव के कारण लेखक को कहीं-कहीं नामोल्लेख मात्र कर संतुष्ट होना पड़ा।

तृतीय और चतुर्थ लेखों में तेलुगु के प्रथम रामकाव्य-रंगनाथ रामायण-तथा आधुनिक काल के अतिप्रसिद्ध रामकाव्य—रामायण कल्प-वृक्ष-का सोदाहरण परिचय प्रस्तुत किया गया है। भारतीय ज्ञानपीठ के सम्मान्य पुरस्कार को प्राप्त करनेवाले 'रामायण कल्पवृक्ष' के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि आज भी भारतदेश के शिक्षित समाज में राम-कथा का परंपरानिष्ठ रूपसमादृत है। पहले लेख में वाल्मीकि रामायण की तुलना में रंगनाथ रामायण की मौलिक उद्भावनाओं को उभारा गया है तो दूसरे लेख में विश्वनाथ रामायण के शिल्प—चातुर्य को।

आन्ध्र के जनमानस ने रामकथा को अपनी भावना के अनुरूप किन-किन रूपों में अपनाया और अभिव्यक्त किया, इसे पंचम लेख में सोदाहरण दर्शाया गया है। इस लेख में मूल के और कुछ उदाहरण दिए जा सकते थे।

षष्ठ लेख तमिल रामायण की परंपरा को प्रस्तुत करता है। तमिल में उपलब्ध रामकथात्मक साहित्य का विस्तार-पूर्वक निदर्शन करते हुए यह प्रमाणित किया गया है कि कम्बर के पूर्व और अनन्तर काल में भी तमिल में रामकाव्यों की रचना प्रचुर मात्रा में हुई है। सप्तम लेख में विद्वान् लेखक ने कम्ब रामायण के साहित्यिक सौंदर्य को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। साथ ही कम्बर के भक्ति

रस एवं दार्शनिक दृष्टि की भी सविस्तार विवेचना हुई है। कम्ब रामायण-रवि के प्रखर प्रकाश के समक्ष लगता है, तमिल के अन्य रामकाव्य अपेक्षाकृत प्रसिद्धि प्राप्त नहीं कर सके।

अष्टम और नवम लेख कन्नड की रामकाव्य परंपरा से संबंधित हैं। प्रथम में कन्नड की रामकाव्य-परंपरा पर प्रकाश डालते हुए कन्नड भाषा में उपलब्ध मुख्य रामायणों का संक्षिप्त किन्तु विवेचनात्मक परिचय दिया गया है तो द्वितीय में कन्नड के प्रतिनिधि रामकाव्य—पंप रामायण-के वस्तुगत तथा शिल्पगत सौंदर्य का मूल्यांकन है। प्रस्तुत लेख में लेखक ने अपेक्षाकृत मूलग्रंथ से अधिक उद्धरण दिए हैं, जिससे पाठक पंप-रामायण के भाषा-सौन्दर्य से अवगत हो सकते हैं।

दशम और एकादश लेखों का संबंध मलयालम रामकाव्य से है। प्रथम में लेखक ने ग्यारहवीं शताब्दी से लेकर अधुनातन रामकाव्यों का संक्षिप्त परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया है। द्वितीय में मलयालम के संतकवि एषुत्तच्छन कृत अध्यात्म रामायण के वस्तुगत एवं शिल्पगत महत्व के साथ ही उसकी दार्शनिक भूमिका को उजागर किया गया है। इसमें मूल से कुछ और उद्धरण दिए जा सकते थे।

संपादकों का यह ध्यान रहा है कि प्रत्येक लेख आकार की दृष्टि से संतुलित हो। संपादन के समय मूल लेखक की भाषा-शैली को यथा–संभव मौलिक ही रहने दिया गया है।

दक्षिण की भाषाओं के साहित्य-सौरभ को हिंदी माध्यम द्वारा समस्त देश में सुवासित करने के उद्देश्य से दक्षिणांचलीय साहित्य समिति साहित्य प्रेमियों के ससक्ष यह प्रथम प्रसून प्रस्तुत कर रही है। इस के सहयोगी समस्त विद्वान् लेखकों के प्रति समिति हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करती है।

दक्षिणांचलीय साहित्य समिति के लिए इस पुस्तक को प्रकाशित कर रामकाव्य के प्रति अपनी पावन श्रद्धा का परिचय देनेवाले

श्री रामचंद्रय्या (स्वामी, आन्ध्र प्रदेश हिंदी प्रकाशन मंदिर) तथा दक्षिण भारत प्रेस के कर्मचारी भी साधुवाद के पात्र हैं।

समिति का प्रथम प्रकाशन होने के नाते संभव है कि इसमें कतिपय न्यूनताएँ हों जिनके संशोधन के लिए हम सुविज्ञ पाठकों से अपना अभिमत आमंत्रित करते हैं।

हमारा विश्वास है कि उत्तर और दक्षिण को निकट लाने में यह पुस्तक 'रामकथासेतु' का काम देगी।

— संपादक मंडल

विजय दशमी, संवत् २०३१
२५-१०-१९७४

—: अनुक्रमणिका :—

रामकथा का मूलस्रोत

– विजयवीर विद्यालङ्कार

वेद विश्व का आदिम साहित्य है। अन्य विषयों की भाँति रामकथा का स्रोत भी वेद में खोजने का प्रयास किया गया है। वैदिकसाहित्य के अनुशीलन से पता चलता है कि रामायण के पात्रों, नगरों तथा नदियों के नाम वेद में उपलब्ध हैं। वैदिक साहित्य में उपलब्ध इन शब्दों के आधार पर यह निर्णय करना आवश्यक है कि ये प्रसंग वस्तुत: रामकथा के स्रोत हैं अथवा किन्हीं अन्य अर्थों के द्योतक हैं।

भारतीय विचारक वेद को नित्य और अपौरुषेय मानते हैं। वेद शब्द विद् ज्ञाने धातु से बनता है—जिसका अर्थ है ज्ञान। अपौरुषेय ज्ञानकोश वेद में पौरुषेय विषयों, वस्तुओं तथा क्रिया-व्यापारों की कल्पना करना तर्कसंगत नहीं है। वेद के सब शब्द यौगिक हैं। प्रत्येक वैदिक शब्द का अर्थ धातु, प्रत्यय, प्रत्ययान्त के सम्बन्ध से निकलता है, वह किसी विशेष अर्थ में रूढ़ नहीं है। इस प्रक्रिया को न समझने के कारण ही वेद में इतिहास की कल्पना की गयी है।

रामायण के प्रधान पात्र श्री रामचन्द्र हैं। ये सूर्यवंशी राजा थे। पुराणों के प्रमाणानुसार सूर्यवंशके मूल पुरुष मनु हैं[1] और उसके आदि पुरुष राजा इक्ष्वाकु हैं। ऋग्वेद में एक स्थान पर इक्ष्वाकु शब्द आया है।[2] इक्ष्वाकु शब्द के प्रयोग मात्र से सूर्यवंशी राजा की वैदिक कल्पना की गयी है। इसके विपरीत रामायण में स्वयं राम कहते हैं कि त्रिशंकु उनके पूर्व पुरुष हैं।[3] प्रस्तुत मन्त्र में इक्ष्वाकु के साथ प्रयुक्त रायी, दिवि और कृष्टय कृषि-सम्बन्धी शब्द हैं, व्यक्तिवाचक नहीं। इसका समर्थन अथर्ववेद से भी हो जाता है। अथर्ववेद

---

१. श्रूयतां मानवो वंशः प्राचुर्येण परन्तप ।
न शक्यते विस्तरतो वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ (श्रीमद् भागवत पुराण, नवम स्कन्ध १।७)

२. यस्येक्ष्वाकुरुप व्रते रेवान्मराय्येधते ।
दिवीव पञ्च कृष्टयः ॥ (ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ६०, मन्त्र ४)

३. पितामह पुरोस्माकमिक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ॥
(वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड सर्ग ४।४९)

में इक्ष्वाकु शब्द औषधि–विशेष के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[1] इसका प्रमाण सुश्रुत भी है।[2]

अम्बरीष भी सूर्यवंशी राजा थे। अम्बरीष शब्द ऋग्वेद में सहदेव, सुराध और भयमान के साथ वर्णित है।[3] वेद में इसका अर्थ आमड़ा वृक्ष है।[4] मन्त्र के पूरे विनियोगार्थ में वार्षागिरा, अम्बरीष, सहदेव, भयमान, सुराध और ऋज्राश्व वेद के ज्ञाता, यज्ञकर्ता अथवा इन्द्रस्तोता के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। अम्बरीष शब्द 'अबि' शब्दार्थक धातु से औणादिक ईषन् प्रत्यय से बना है।[5] वैदिक-प्रक्रिया से अम्बरीष ऐतिहासिक राजा तो सिद्ध नहीं होते, महाभारतकालीन सहदेव के साथ वर्णित होने से काल–दोष से भी युक्त हैं।

वेद में रामकथा के प्रसिद्ध ऋषि अगस्त्य, वसिष्ठ तथा विश्वामित्र का नामोल्लेख भी मिलता है। ऋग्वेद में अगस्त्य का उल्लेख अनेक स्थलों पर हुआ है।[6] अगस्त्य का अर्थ प्रतिष्ठित-निर्दोष विद्वान्, यजमान और प्रजा, बल आदि की कामना करनेवाला है।

---

१. यं त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको यं वा त्वा कुष्ठ काम्यः।
यं वा वसो यमात्स्यस्तेनासि विश्वभेषजः ॥ (अथर्व. १९।३९।९)

२. 'इक्ष्वाकु कटुतुम्बिका' (सुश्रुत सूत्र, अ. ४४।७)
इक्ष्वाकु कुसुमचूर्णंवा पूर्ववदेव क्षीरेण,
कासश्वासच्छर्दिकफरोगेषु उपयोगः। (वही अ. ४४।७)

३. एतत्त्यत्त इन्द्र वृष्ण उक्थं वार्षागिरा अभि गृणन्ति राधः।
ऋज्राश्व प्रष्टिभिरम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधः ॥
(ऋग्वेद १।१००।१७)

४. वैदिक सम्पत्ति—पं. रघुनन्दन शर्मा पृ. ५६

५. वैदिक-इतिहास–विमर्श–आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री पृ. १६४

६. युवां चिद्धिष्माश्विनावनु द्यून्विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ।
अगस्त्यो नरां नृषु प्रशस्तः काराधुनीव चितयत्सहस्रैः ॥
(ऋग्वेद १।१८०।८)

विद्युतो ज्योतिः परि सञ्जिहानं मित्रावरुणा यददश्यतां त्वा।
तत्ते जन्मोतैकं वसिष्ठागस्त्यो यत्त्वा विश आजभार ॥
(ऋग्वेद ७।३३।८)

यथोत कृत्व्ये धनेंशुं घोष्वगस्त्यम्। यथावाजेषु सेभरिम् ॥
(ऋग्वेद ७।५।२६)

अगस्त्य नद्भ्यः सप्ती युनक्षिरोहिता। पणीन्न्यक्रमीरभि विश्वान्राजन्नराधसः ॥ (ऋ. १०।६०।६)

राजकुलगुरु वसिष्ठ का वर्णन वेद के विभिन्न मन्त्रों में उपलब्ध है। वेद में वसिष्ठ शब्द अनेकार्थवाची है। याज्ञिक प्रक्रिया में वसिष्ठ पुरोहित ऋत्विक तथा विद्वान् है। वह सर्व-संरक्षण और सर्वहित-सम्पादन के लिए पुरोहित बनता है।[1] वसिष्ठ का अर्थ अग्नि है।[2] वसिष्ठ प्राण को भी

---

१. श्वित्यञ्चो मा दक्षिणतस्कपर्दा धियंजिन्वासो अभि हि प्रमन्दुः।
उत्तिष्ठन्वोचे परि बर्हिषो नॄन्न मे दूरादवितवे वसिष्ठाः।
(ऋग्वेद ७।३३।१)

प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्रन्।
विवर्तयन्तीं रजसी समन्ते आविष्कृण्वतीं भुवनानि विश्वा॥
(ऋग्वेद ७।८०।१)

वसिष्ठासः पितृवद्वाचमक्रत देवाँ ईळाना ऋषिवत् स्वस्तये।
प्रीता इव ज्ञातयः काममेत्यास्मे देवासोऽव धूनुता वसु॥
(ऋग्वेद १०।६६।१४)

देवान्वसिष्ठो अमृतान्ववन्दे ये विश्वा भुवनाभि प्रतस्थुः।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥
(ऋ. १०।६६।१५)

नि त्वा वसिष्ठा अह्वन्त वाजिनं गृणन्तो अग्ने विदथेषु वेधसः।
रायस्पोषं यजमानेषु धारय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥
(ऋग्वेद १०।१२२।८)

अग्निरत्रिं भरद्वाजं गविष्ठिरं प्रावन्नः कण्वं त्रसदस्युमाहवे।
अग्निं वसिष्ठो हवते पुरोहितो मृळीकाय पुरोहितः॥
(ऋग्वेद १०।१५०।५)

२. नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ असदत्सुदक्षः।
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वो अग्निः। (ऋ. २।९।१)

कहते हैं ।[1] वेद में वसिष्ठ शब्द कहीं अगस्त्य के साथ आया है[2] और कहीं पराशर के साथ प्रयुक्त हुआ है ।[3] यहाँ पराशर का **अर्थ** ऊष्मा–बल और वसिष्ठ का अर्थ प्राण है । अन्यत्र यह शब्द जलीय पदार्थ के अर्थ में भी उल्लिखित है ।[4] इस प्रकार वेदोक्त वसिष्ठ ऐतिहासिक रामकथा के मूलस्रोत सिद्ध नहीं होते ।

विश्वामित्र का वर्णन वाल्मीकि रामायण में मिलता है ।[5] वेद में विश्वामित्र अर्थात् कौशिक (कुशिकस्य अपत्यं पुमान् कौशिकः) के बारे में कहा गया है कि वह आकाश को रोकता है और इन्द्र कुशिक के द्वारा सुदास को हानि पहुँचाता है ।[6] यहाँ इन्द्र का अर्थ सूर्य है । यह सूर्य ही कुशिक नक्षत्र द्वारा आकाशीय पदार्थ सुदास की हानि करता है । अथर्ववेद में तो विश्वामित्र के साथ नाना ऋषियों का स्पष्टतः नामोल्लेख है ।[7] ये ऋषि प्रशंसनीय पितर

---

१. प्राणो वै वसिष्ठ ऋषिः (शतपथ ८।१।६)

२. विद्युतो ज्योतिः परि सञ्जिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा ।
तत्ते जन्मोतैकं वसिष्ठागस्त्यो यत्त्वा विश आजभार ॥
(ऋग्वेद ७।३३।१०)

३. प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः ।
न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ताधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् ॥
(ऋग्वेद ७।१८। २१)

४. त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेतस्तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः ।
त्रयोधर्मास उषसं सचन्ते सर्वां इत्तां अनु विदुर्वसिष्ठाः ॥
(ऋग्वेद ७।३३।७)

५. वाल्मीकिरामायण, बालकाण्ड, सर्ग १८ से ३५, ५७ से ६७.

६. महाँ ऋषिर्देवजा देवजूतोऽस्तभ्नात्सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः ।
विश्वामित्रो यदवहत्सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्र ॥ (ऋग्वेद ३।५३।९)

७. कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः श्यावाश्वः सोभर्यर्चनानाः ।
विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरत्रिरवन्तु नः कश्यपो वामदेवः ॥
(अथर्व. १८।३।१५)

विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव ।
शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः सुशंसासः पितरो मृडता नः ॥
(अथर्व. १८।३।१६)

हैं। ये पितर कोई और नहीं, सूर्य-चन्द्र की किरणें ही हैं। इस विषय को अथर्ववेद में और अधिक स्पष्ट किया गया है। ये ऋषि अर्थात् रश्मियाँ रोग-क्रिमियों का नाश करने वाली हैं।[1] आधुनिक चिकित्साशास्त्री भी सूर्य-रश्मियों से सर्व प्रकार के रोग-क्रिमियों के नाश का समर्थन करते हैं।[2]

रामकथा के विशिष्ट पात्र दशरथ का नाम भी वेद में मिलता है। वहाँ 'दशरथ' संज्ञा ऐसे चक्रवर्ती राजा को दी गयी है जिसके चार-चार घोडों से युक्त दसों दिशाओं में गमनशील रथ, सहस्रों अश्ववार, लाखों वीर पदाती हैं और जिस में विपुल धन, ऐश्वर्य, विद्या, विनय आदि गुण विद्यमान हैं।[3] प्रस्तुत मन्त्र में सूर्यवंशी राजा दशरथ का किंचित् आभास तक नहीं है। राजा दशरथ उक्त गुणों से युक्त हो सकते हैं किन्तु मानव राजा दशरथ के गुणों का उल्लेख नित्यज्ञान वेद में कदापि नहीं हो सकता।

श्री राम रामकथा के प्रमुख पात्र हैं – रामयण के नायक हैं। राम का उल्लेख वेद में मिलता है। राम शब्द अथर्ववेद में 'महारोगनाश' प्रसंग में आया है। इस मन्त्र में राम और कृष्ण दोनों शब्दों का साथ-साथ प्रयोग है। औषधि को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि 'तू उष्णता से युक्त है, रात्रि में उत्पन्न होती है, (रामे) रमण करने वाली है, (कृष्णे) चित्त को खींचने वाली है और पूर्णसारवाली है। रूप को विकृत करने वाले कुष्ठ और पाण्डुरता

१. उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः।
ये अन्तः क्रिमयो गवि ।। (अथर्व. २।३२।१)
अत्रिवद् वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत्।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ।। (अथर्व. २।३२।३)

2. Light especially the light of the sun, has a truely wonderful effect on nearly all forms of germs. Almost without exception they are killed by the rays of the sun.
— 'Medical Science of Today'
by Dr. Willmott Evans, M. D.

३. चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति।
मदच्युतःकृशनावतो अत्यान्कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पज्राः ।।
(ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त १२६, मन्त्र ४)

को दूर कर शरीर को स्वाभाविक रंग में बदल देने वाली है।[1] स्पष्ट है कि प्रस्तुत मन्त्र में राम शब्द का अर्थ न तो दशरथसुत राम है और न कृष्ण का अर्थ देवकीपुत्र कृष्ण है। राम शब्द 'रम् कर्तरि घञ्, ण वा' से बना है जिसका अर्थ है—रमणीय, सुखदायक अथवा आनन्दप्रद। आचार्य सायण ने भी अपने अथर्ववेद भाष्य में 'राम' का अर्थ रमणीय ही किया है। अन्यत्र उन्होंने 'राम' का अर्थ औषधि-विशेष किया है,[2] जो अथर्ववेदीय चिकित्सा-पद्धति के अनुकूल है। राम शब्द ऋग्वेद में भी प्रयुक्त हुआ है।[3] मन्त्रोक्त यह शब्द रम्यकार्य-तत्पर उदारचित्त यजमान का द्योतक है, किसी व्यक्ति विशेष का नहीं।

सीता शब्द का उल्लेख चारों वेदों में है। वैदिक सीता शब्द विशुद्ध वैज्ञानिक है। यह सीता कृषि-कर्म में अत्यन्त उपयोगी है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में कृषि की अधिष्ठात्री देवी सीता[4] से धन-धान्य की प्रार्थना की गयी है।[5] अथर्ववेद में सीता का स्पष्ट और विस्तृत वर्णन हैं।[6] इसमें कृषि

---

१. नक्तंजातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च।

इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत्॥ (अथर्व. १।२३।१)

पं. क्षेमकरणदास त्रिवेदी-भाष्य, सार्वदेशिक सभा संस्करण, दिल्ली।

२. 'भृंगराजाख्या ओषधि' अथर्ववेद-सायणभाष्य

३. प्र तद्दुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु।

ये युक्त्वाय पञ्च शतास्मयु पथा विश्राव्येषाम्। (ऋग्वेद १०।९३।१४)

४. 'हल की रेखा' (जुती धरती) क्षेमकरणदास त्रिवेदी, अथर्ववेदभाष्यम्, पृ. २७७, सार्वदेशिक सभा संस्करण, दिल्ली।

५. अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा।

यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि॥ (ऋग्वेद ४।५७।६)

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषानु यच्छतु।

सा नः पयस्वती दुहामुत्तरां समाम्॥ (ऋग्वेद ४।५७।७)

६. अथर्ववेद काण्ड ३, सूक्त १७, मन्त्र १-९, देवता-सीता।

विद्या का सम्यक् प्रतिपादन और विधान किया गया है। यजुर्वेद में सीता[1] को घृत-मधु-शर्करा से संयुक्त और संस्कृत कर उससे अन्न-सिद्धि के लिए खेती करने की बात कही गयी है।[2] इससे स्पष्ट है कि वैदिक साहित्य में प्रयुक्त सीता शब्द जनकसुता अथवा राम-पत्नी न होकर पूर्णत. यौगिक है—और सार्थक है।

वेद में राम के अनुज भरत का नामोल्लेख भी है। ऋग्वेद में भरत का वर्णन वसिष्ठ के साथ हुआ है।[3] अन्यत्र भारत शब्द का प्रयोग मिलता है[4] वैदिक इतिहासवादी 'वैदिक इण्डेक्स' कर्ता ने भारत शब्द से भारत नामक एक राजा की कल्पना की है, जब कि मन्त्र में प्रयुक्त भारत शब्द यौगिक है और विशेषण रूप में प्रयुक्त हुआ है। निघण्टु में भरत और भारत दोनों ही शब्द ऋत्विग् अर्थ में पठित हैं।[5] ऋग्वेद और यजुर्वेद में भरत शब्द का प्रयोग भरण-पोषण में तत्पर राष्ट्र-रक्षक राजा के लिए किया गया है।[6] शतपथ

---

१. आचार्य सायण के अनुसार सीता=सीताधारकाष्ठा है।
'साययन्ति क्षेत्रस्थलोष्ठान् क्षयन्ति यया सा काष्ठपट्टिका'—
दयानन्द सरस्वती—यजुर्वेदभाष्यम्, रामलालकपूर ट्रस्ट प्रकाशन, द्वितीय भाग, पृष्ठ २४७।

२. घृतेन सीता मधुना समज्यतां विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः।
ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमानास्मान्त्सीते पयसाभ्या ववृत्स्व॥
(यजुर्वेद १२।७०)

इस मन्त्र की व्याख्या शतपथ में है—
(अयं मन्त्रः श. ७।२।२।१० व्याख्यातः) उपरोक्त भाष्य, पृ. २४७।

३. दण्डाइवेद्गो अजनास आसन्परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः।
अभवच्च पुरएता वसिष्ठ आदित्तृत्सूनां विशो अप्रथन्त॥
(ऋग्वेद ७।३३।६)

४. अमन्थिष्टां भारता रेवश्रनं देवश्रवा देववातः सुदक्षम्।
अग्ने वि पश्य बृहताभि रायेपां नो नेता भवतादनु द्यून्॥
(ऋग्वेद ३।२३।२)

५. निघण्टु ३।३।

६. प्रप्रायमग्निर्भरतस्य श्रृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्भाः।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच॥
(ऋग्वेद ७।८।४)

ब्राह्मण में प्रजापति को भरत कहा गया है ।[1] अग्नि को भी भरत और भारत दोनों ही कहा गया है ।[2] कौशीतकी ने अग्नि को और ऐतरेय ने प्राण को भरत कहा है ।[3] शतपथ, कौशीतकी तथा तैत्तरीय के अनुसार ब्राह्मण और भारत दोनों अग्नि हैं ।[4] अत: इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि रामायणीय रामानुज भरत का वैदिक साहित्य में कहीं वर्णन नहीं है ।

लक्ष्मण रामकथा के महत्त्वपूर्ण पात्र हैं । उन में त्याग, पराक्रम, शौर्य आदि महान् लक्षण थे । लक्ष्म चिन्ह अथवा लक्षण को कहते हैं । लक्ष्मण का अर्थ है लक्षणवाला । लक्ष्मण पद लभ्, लक्ष्, लाञ्छ, लष्, लग धातुओं से बनता है । निरुक्त में इसके अर्थ का स्पष्टीकरण मिलता है ।[5] लक्ष्मी शब्द भी उक्त धातुओं से बनता है । अत: नाना लक्षणों से सम्पन्न व्यक्ति को लक्ष्मण कहा जाता है । ऋग्वेद में लक्ष्मण्य का उल्लेख है ।[6] इसमें 'श्रेष्ठ लक्षणों में उत्पन्न' को लक्ष्मण्य कहा

यजुर्वेद १२।३४ में 'द्युतानो' के स्थान पर 'दीदाय' और 'शुशोच' के स्थान पर 'शिवोनः' पाठ है । शेष मन्त्र यथावत् है ।

१. शतपथ ६।८।१।१४ 'प्रजापतिर्वै भरतः, सहीदं सर्वं बिभर्त्ति ।'

२. शतपथ १।४।२।२ 'एष (अग्निः) हि देवेभ्यो हव्यं भरति तस्माद्भरतोऽग्निरित्याहुः ।'

शतपथ १।५।१८ एष (अग्निः) उ वा इमाः प्रजाः प्राणो भूत्वा बिभर्ति तस्माद्धेवाह भरतवदिति ।'

शतपथ १।४।२।२ 'एष (अग्निः) उ वा इमाः प्रनाः प्राणो भूत्वा बिभर्त्ति तस्माध्देवाह भारतेति ।

३. कौशीतकी ३।२ 'अग्निर्वै भरतः स वै देवेभ्यो हव्यं भरति ।'
ऐतरेय २।२४ 'प्राणो भरतः ।'

४. शतपथ १।४।२।२ 'अग्ने महाँ असि ब्राह्मण भारत ।'
कौशीतकी ३।२; तैत्तरीय ३।५।३।१.

५. निरुक्त ४।११

६. उत त्ये मा ध्वन्यस्य जुष्टा लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः ।
महना रायः संवरणस्य ऋषेर्व्रजं न गावः प्रयता अपि ग्मन् ।।
(ऋग्वेद ५।३३।१०)

गया है। शतपथ में कहा है कि जिस के मुख और दायीं ओर लक्ष्म अर्थात् लक्षण होता है, उसे पुण्य लक्ष्मीक कहा जाता है।[1] जो लक्षणों से भरपूर हो, उसे भी पुण्य लक्ष्मीक कहते हैं।[2] सौमित्र लक्ष्मण लक्षणान्वित थे। अनुरूप गुणों और लक्षणों को देख कर महर्षि वसिष्ठ ने उनका नामकरण-संस्कार किया था। वाल्मीकि रामायण में इसका उल्लेख है।[3] अतः रामायण के पात्र लक्ष्मण को वैदिक आधार प्रदान कर उन्हें वेद सम्मत सिद्ध करना असंगत है।

वेद में दशानन रावण का भी उल्लेख मिलता है। रावण ब्राह्मण कुलोत्पन्न विद्वान् राजा था। अथर्ववेद में ऐसे ब्राह्मण का वर्णन किया गया है जो 'दशशीर्ष' अर्थात् दस प्रकार[4] के 'बलों में शिर रखनेवाला' तथा 'दशास्य' अर्थात् 'दश दिशाओं में मुख के समान पोषण शक्तिवाला वा दश दिशाओं में स्थितिवाला' है और उस वेदविद् प्रधान पुरुष ब्राह्मण ने विष अर्थात् बुराई को दूर कर सबका भला किया है।[5] इसके विपरीत रामायण का प्रतिनायक दशानन रावण बुराई का खजाना था-दुर्गुणों की खान था। वह समाज में

---

१. शतपथ ८।४।४।११ 'तस्माद्यस्य मुखे लक्ष्म भवति तं पुण्यलक्ष्मीक इत्याचक्षते।'

'तस्माद्यस्यदक्षिणतो लक्ष्म भवति तं पुण्यलक्ष्मीक इत्याचक्षते।'

२. शतपथ ८।५।४।३ 'तस्माद्यस्य सर्वतो लक्ष्म भवति तं पुण्यलक्ष्मीक इत्याचक्षते।'

३. वाल्मीकिरामायण, बालकाण्ड, सर्ग १८।१६ 'गुणवन्तोऽनूरूपाश्च'

अतीत्यैकादशाहं तु नामकर्म तथाकरोत्।
ज्येष्ठं रामं महात्मानं भरतं कैकयीसुतम्॥२१॥
सौमित्रिं लक्ष्मणमिति शत्रुघ्नमपरं तथा।
वसिष्ठः परमप्रीतो नामानि कुरुते तदा॥२२॥

४. 'दान, शील, क्षमा, वीर्य, ध्यान, बुद्धि, सेना, उपाय, गुप्तदूत और ज्ञान।' अथर्ववेदभाष्य, क्षेमकरणदास त्रिवेदी, पृ. ३४५, सार्वदेशिक सभा–संस्करण, दिल्ली।

५. ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः।
स सोमं प्रथमः पपौ स चकारारसं विषम्॥ (अथर्ववेद ४।६।१)

प्रधान पुरुष न होकर अधम पुरुष था। उसमें पोषणशक्ति के स्थान पर शोषण शक्ति अधिक थी। इस प्रकार वैदिक दशमुख और रामायण के दशानन में महान् अन्तर है। वेद के आधार पर रामायणीय दशानन की कल्पना सर्वथा निर्मूल है।

वेद में रामायण के मनुष्य नामों की भाँति नगरों और नदियों के नाम भी पाये जाते हैं। अथर्ववेद में अयोध्या का उल्लेख है।[1] इसके बारे में कहा गया है कि "यह नगरी आठ परिखा और नव द्वारों वाली देवनगरी है। इसमें हिरण्यकोश है, जो स्वर्गज्योति से आवृत है। यहाँ तिहरा बन्दोबस्त है और यक्ष आत्मा की भाँति बैठा है, जिस को ब्रह्मविद् लोग जानते हैं।[2]" यहाँ शरीर को अयोध्या की संज्ञा दी गयी है। गीता में भी इसी प्रकार का वर्णन मिलता है।[3] निर्गुण भक्ति धारा के प्रमुख सन्त-कवि महात्मा कबीर ने भी इसी बात की पुष्टि की है।[4]

मन्त्र में वर्णित शरीर रूपी अयोध्या और मनुवंशजों द्वारा आवासित सरयूतीरस्थ अयोध्या में यही समानता हो सकती है कि आत्मा रूपी प्रजा शरीर रूपी अयोध्या नगरी में सुख पूर्वक आत्म-कल्याण-साधन और जीवन-यापन करती थी। वह नगरी स्वर्गमयी थी–पूर्णतः सुरक्षित थी। इसके अतिरिक्त वेदोक्त अयोध्या शब्द से ऐतिहासिक अयोध्या नगरी का अर्थ ग्रहण करना असमीचीन है। मनु का कथन है कि वेद के शब्दों से ही सब पदार्थों के नाम रखे गये हैं।[5] इससे सिद्ध है कि सरयूतट पर राम के पूर्वजों ने जो नगरी

---

१. अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥ (अथर्ववेद १०।२।३१)
तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ॥ (अथर्ववेद १०।२।३२

२. वैदिक सम्पत्ति–पं. रघुनन्दन शर्मा, पृष्ठ ६५ (तृतीय संस्करण)

३. 'नव द्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्' (श्रीमद्भगवद्गीता ५।१३)

४. नव द्वारे को पींजरा तामे पंछी पौन। रहने में आश्चर्य है गये अचम्भा कौन ॥

५. सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संज्ञाश्च निर्ममे ॥ (मनुस्मृति १।२१)

बसायी थी, वेद के आधार पर उसका सार्थक नाम अयोध्या रखा गया था ।[1]

सरयू नदी का वर्णन भी वेद में मिलता है। नदी का धात्वर्थ 'चलनेवाला, बहनेवाला अथवा वेगवाला' आदि होता है। ऋग्वेद में सरयू शब्द 'सरणशील' अर्थ में प्रयुक्त है।[2] सरयू को 'पुरों की इच्छा करनेवाली-निरन्तर चलनेवाली' नदी के रूप में बतलाया गया है।[3] मन्त्रोक्त 'पुरीषिणी' अर्थात् पुरों की इच्छा करने वाली' यह अर्थ वेदोक्त आचरण करनेवाले मन्वादि राजाओं द्वारा सरयू तीर पर अयोध्या नगरी को प्रतिष्ठापित करने की सार्थकता को स्पष्ट करता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वैदिक साहित्य में रामकथा का कोई मूल स्रोत नहीं है। रामकथा का मूलस्रोत तो आदिकवि वाल्मीकि का वह मूल भाव शोक है, जो श्लोक[4] रूप में परिणत होकर अमरकाव्य रामायण के रूप में प्रतिष्ठित हुआ है। अथवा रामकथा का मूलस्रोत नारद का वह उपदेश है,[5] जिसे वाक्यविशारद वाल्मीकि ने सुनकर

---

१. अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता ।
मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम् ॥
(वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, ५।६)

२. उत त्या सद्य आर्या सरयोरिन्द्र पारतः ।
अर्णाचित्ररथावधीः ॥ (ऋग्वेद ४।३०।१८)

३. मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुर्मा वः सिन्धुर्नि रीरमत् ।
मा वः परिष्ठात्सरयुः पुरीषिण्यस्मे इत्सुम्नमस्तु वः ॥
(ऋग्वेद, ५।५३।९)

ऋग्वेद भाष्य-दयानन्द सरस्वती, दयानन्दसंस्थान, दिल्ली प्रकाशन ।

४. मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः ।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥
(वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड २।१५)

५. 'नारदस्य तु तद् वाक्यं श्रुत्वा वाक्यविशारदः ।'
(वही, बालकाण्ड २।१)

ब्रह्मा के आदेशानुसार रामायण के रूप में प्रस्तुत किया है ।[1] रामायण आदि काव्य है ।[2] वेदज्ञ मुनि वाल्मीकि ने वेदाचरणशील मर्यादा पुरुषोत्तम राम का चरित्र रामायण महाकाव्य में वेदानुरूप अंकित किया है ।[3] "जिस दिन किसी कवि ने रामकथा विषयक स्फुट आख्यान-काव्य का संकलन कर उसे एक ही कथा-सूत्र में ग्रथित करने का प्रयास किया था, उस दिन रामायण उत्पन्न हुआ। वह कवि कौन था ? प्राचीनतम परम्परा वाल्मीकि को आदि कवि मानती है ।"[4] स्वयं रामायण काव्य भी इसका समर्थन करता है ।[5] कवि कुलगुरु कालिदास भी वाल्मीकि को आदिकवि मानते हैं ।[6]

रामकथा के व्यापक प्रचार के साधन काव्योपजीवी कुशीलव थे, जो सर्वत्र विचरण कर लोगों को रामायण सुनाया करते थे। रामायण—कर्ता वाल्मीकि का भी अपने शिष्यों को यही आदेश था ।[7] कालान्तर में रामकथा इतनी लोकप्रिय हुई कि इसका प्रचार और विकास विश्व की विभिन्न भाषाओं में दिखलाई देता है। यही नहीं, रामकथा अनेक परम्पराओं और मान्यताओं

---

१. 'रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम । (वही २।३२)

२. 'रामायणमादिकाव्यं' (वाल्मीकीयरामायणमाहात्म्य, १।३५)

३. 'रामायणं महाकाव्यं सर्ववेदेषु सम्मतम् ।' (वही १।१९)

४. 'रामकथा: उत्पत्ति और विकास, कामिल बुल्के, पृष्ठ १३४–१३५)

५. 'आदिकाव्यमिदं चार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ।
(वाल्मीकि रामायणम्, युद्धकाण्ड १२८।१०७)

'शृणु रामायणं विप्र वाल्मीकि मुनिना कृतम् ।'
(वाल्मीकिरामायणमाहात्म्य २।४०)

'वाल्मीकिमुनिना पूर्वं कथा रामायणस्य च ।' (वही २।५७)

६. 'कवेराद्यस्य शासनात् ।' (रघुवंश १५।४१)

७. स शिष्यावब्रवीद्धृष्टौ युवां गत्वा समाहितौ ।
कृत्स्नं रामायणं काव्यं गायतां परया मुदा ।।
वाल्मीकिरामायणम्, उत्तरकाण्ड ९३।५)

से संग्रथित होती हुई परवर्ती कवियों के काव्य का प्रेरणा-स्रोत भी बन गयी है। संस्कृत में वाल्मीकि के अनुकरण पर अनेक रामायणों की रचना हुई है। इन में अध्यातमरामायण, आनन्दरामायण और अद्भुत रामायण प्रमुख हैं। इन के अतिरिक्त योगवासिष्ठ रामायण, तत्वसंग्रहरामायण, अग्निवेशरामायण, अब्दरामायण, भुशुण्डीरामायण, महारामायण, मन्त्ररामायण, गायत्रीरामायण और वेदान्तरामायण के नाम भी उल्लेखनीय हैं। ये भी वाल्मीकीय रामायण के आधार पर ही लिखे गये हैं। आनन्दरामायण से यह बात स्वतः स्पष्ट हो जाती है।[1]

संस्कृत की भाँति अन्य भारतीय भाषाओं में भी रामायण उपलब्ध होते हैं। इनका मूल आधार भी वाल्मीकीय रामायण ही है। तमिल में कम्ब रामायण, तेलुगु में रंगनाथकृत द्विपदरामायण और मोल्लरामायण, मलयालम में कण्णश रामायण और अध्यातमरामायण कन्नड में नरहरि कृत तोरवे रामायण, कश्मीरी में दिवाकरभट्टरचित कश्मीरीरामायण, असमिया में माधवकन्दली रामायण, बंगाली में कृत्तिवास रामायण हिन्दी में गोस्वामी तुलसीदास रचित रामचरितमानस मराठी में एकनाथकृत भावार्थरामायण, गुजराती में गिरधररामायण तथा उर्दू-फारसी में मुल्ला मसीही कृत रामायण मसीही आदि इसके प्रमाण हैं।

इस प्रकार रामकथा की परम्परा आदि कवि वाल्मीकि से आरम्भ होकर अबाध गति से प्रवाहित होती रही है और यह परम्परा आज भी विद्यमान है।

वाल्मीकि रामायण के बाद रामकथा-विषयक सर्वाधिक ख्याति 'रामचरितमानस' को मिल सकी है। गोस्वामी तुलसीदास विरचित इस रचना पर प्रारम्भ में वाल्मीकि रामायण का प्रभाव है किन्तु बाद में उस पर अध्यात्मरामायण का विशेष प्रभाव प्रतिलक्षित होता है। तुलसी का 'मानस' जन-

---

१. 'रामायणादेव नाना सन्ति रामायणानि हि' (आनन्दरामायण, मनोहरकाण्ड, सर्ग ८।६२)

मानस के मनस्ताप को दूर करने का सफल साधन सिद्ध हुआ है। यद्यपि हिन्दी में गोस्वामी तुलसीदास के अतिरिक्त रामकथा विषयक अन्य अनेक काव्य ग्रन्थ लिखे गये हैं तथापि "तुलसी की प्रतिभा और काव्यकला इतनी उत्कृष्ट प्रमाणित हुई कि उनके बाद किसी भी कवि की रामचरित सम्बन्धी रचना उनके मानस की समानता में प्रसिद्धि प्राप्त न कर सकी—मानस के सामने कोई भी प्रबन्धकाव्य आदर की दृष्टि से न देखा गया।[1]"

रामकथा ही रामायण है। रामायण मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र का उज्वलमय जीवनादर्श है। रामायण के माध्यम से महर्षि वाल्मीकि ने मानव मात्र को शाश्वत सन्देश प्रदान किया है। यह सन्देश जन-जीवन को युगों से आन्दोलित करता रहा है—आप्लावित करता रहा है। रामायण का उद्देश्य मर्यादा की रक्षा और आदर्शमय जीवन का निर्माण करना है। अतः रामायण भारतीय-जीवन का मूल आधार है। रामायण का मूल स्रोत आदि कवि वाल्मीकि का वह उदात्त भाव शोक है, जो प्राणिमात्र के शोक का प्रतिनिधि रूप बन कर श्लोकबद्ध होकर मुखरित हुआ था।[2] उनका वह भाव आज भी सहृदय-समाज को विभावित करता है—रसाण्वित करता है। राम-कथा का मूल स्रोत वह कारुण्य है, जो सरस है—महारस है। इस रस का मूल स्रोत वेद है। आचार्य भरत का नाट्यशास्त्र इसका साक्षी है।[3] करुण काव्य रामायण का हर शब्द सहृदय पाठक को करुणाभिभूत कर देता है। निश्चित ही वाल्मीकि का यह आदिम महाकव्य रामायण चित्त-प्रसाद रसायण है। इसका मूल रस करुण[4] शाश्वत है—सार्वभौमिक है।

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ. रामकुमार वर्मा पृष्ठ ३४४।

२. पादबद्धोक्षरसमस्तन्त्रीलयसमन्वितः।
शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा॥
(वाल्मीकि रामयण, बालकाण्ड २।१८).
'शोकः श्लोकत्वमागतः' (वही बालकाण्ड २।४०)
'काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवे पुरा।
क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगात्थः शोकः श्लोकत्वमागतः॥' (ध्वन्यालोक १।५)
'निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः।'
(रघुवंश १४।२७)

३. 'रसानाथर्वणादपि' (नाट्यशास्त्र १।१७)

४. 'रामायणे करुणः' (साहित्यदर्पण ४।१०)

तेलुगु में रामायण की परम्परा

– डॉ० सीएच्० रामुलु

काव्य कान्तासम्मित है। लौकिक–जीवन से कलुषित मन काव्यपठन के द्वारा सत्त्वप्रधान हो, रसानन्द का अनुभव करता है, तत्पश्चात् उत्तम संस्कारों को उज्जीवित कर लेता है। मानव की शुद्ध सात्त्विक–प्रकृति रसस्वरूप भगवान के अभिमुख हो जाती है तथा पर्यवसान में उस परमतत्त्व की प्राप्ति की चाह ही भक्ति कही जा सकती है। इस प्रकार रामकाव्य परम्परा का पठन तथा राम–भक्ति का समन्वय किया जा सकता है। तेलुगु प्रान्त तथा जनता में राम साहित्य का प्रभाव भक्ति के रूप में प्रकट हुआ। श्रीराम मन्दिर अनेक बनाये गये। विशेषता है कि आन्ध्र प्रान्त प्राचीनकाल से श्रीराम क्षेत्र अत्यधिक हैं। कोने–कोने में राम भक्त संघ–समाज, भजन मंडलियों का निर्माण हुआ। राम कथा ने तेलुगु जनता के हृदय को अनेक दृष्टियों में परिष्कृत किया। उसके जीवन की कुण्ठाओं को बाहर प्रकट किया, आदर्श जीवन को सामने रखा। साहित्य से जितने भी सत्फल साध्य हो सकते हैं रामकथा ने सब को सिद्ध कर दिया। राम साहित्य की सृष्टि से जनता रामपरक आदर्श को प्रकट कर अपने आपको परिष्कृत करती है। इस सुधारने में अन्तर्मुखी होना, सर्वोत्कृष्ट जीवन को प्राप्त करना, उस मनोरम तादात्म्य स्थिति के लिए प्रगतिशील होना आदि उपलब्धियाँ हैं।

रामकथा में वस्तु की एकता (यूनिटी ऑफ प्लाट) है। अतः पाठक की आसक्ति विकेन्द्रित न होकर कैवल्योन्मुख हो जाती है। इसी उदात्त गुण के कारण सामान्यजन को तथा काव्य निर्माण के उत्साही कवियों को रामायण प्राणप्रद बन पड़ा है। संस्कृत साहित्य में पुराण साहित्य, अध्यात्मरामायण, आनन्द रामायण, अद्भुत रामायण, जैमिनि रामायण बृहत् कोशालखण्ड इत्यादि धर्म ग्रंथों में राम भक्ति तथा रामकथा के स्रोत प्राप्त होते हैं। राम साहित्य का मूलस्रोत वाल्मीकि विरचित श्रीमद्रामायण है जो सर्वालंकार शोभित महाकाव्य है। यह सब रसों का निलय है। आधुनिक भारतीय

भाषाओं की रामायण परम्परा को वाल्मीकि रामायण का ही विस्तृत रूप कहा जा सकता है।

तेलुगु में राम साहित्य का उद्भव विचित्र ही कहा जा सकता है, क्योंकि वैदिक धर्म के पुनरुद्धार के लिए महाभारत का आन्ध्रीकरण हुआ, तब वीर शैव साहित्य का निर्माण शैवधर्म के प्रभाव में हुआ तथा वैष्णव सम्प्रदाय की व्याप्ति के लिए आमुक्तमाल्यदा (श्री कृष्ण देवराय) आदि की रचना हुई। किन्तु इसके अपवाद स्वरूप किसी भी सम्प्रदाय में बद्ध न होकर नन्नया (तेलुगु में आदि कवि) से लेकर आज तक रामायण कथा की रचना होती आ रही है।

तेलुगु में महाभारत एक ही अद्वितीय ग्रंथ है। किन्तु रामायण की बात ऐसी नहीं है। इसके अनेक अनुवाद तथा स्वतंत्र रचनाएँ बड़ी संख्या में प्राप्त हैं। तेलुगु में साहित्यिक प्रक्रियाएँ जितनी हैं सब में राम साहित्य का निर्माण हुआ है। विपुल काव्य के रूप में (यथानुवाद तथा स्वतंत्रानुवाद), संक्षेप काव्य के रूप में, प्रबन्ध काव्य के रूप में, कल्याण काव्य परम्परा में, ठेठ तेलुगु काव्य के रूप में, द्विपद काव्य परम्परा में, श्लेष काव्य परम्परा में, लघु काव्य, दण्डक, यक्षगान गीत–भजन, शतक, स्तोत्र, वचन काव्य, नाटक इत्यादि काव्य रूपों में रामकथा आन्ध्र वाङ्मय में व्याप्त है।

विपुल काव्य परम्परा

विपुल काव्य परम्परा के अन्तर्गत रामायण के यथानुवाद तथा स्वतंत्रानुवाद काव्यों की चर्चा की जाती है।

भास्कर रामायण

तेलुगु साहित्य की विशेषता यह है कि कवित्रय (नन्नय, तिक्कना, एर्रा प्रगडा) ने महाभारत की रचना की तो कवि चतुष्टय (बम्मेरा पोतना, वेलिगंदल नारया, एर्चूरि सिंगया, गंगय्या) ने महाभागवत की रचना की तो भास्करादि कवि चतुष्टय ने रामायण की रचना की। समकालीन न होते हुए भी इन कवियों ने महाकवि के सत् कार्य को आगे बढ़ाया और अपने सम्मिलित प्रयत्न से उसे पूरा किया।

भास्कर रामायण की रचना चार कवियों ने मिलकर की। हुलक्कि भास्कर, उनके पुत्र मल्लिकार्जुन भट्ट, शिष्य कुमार रुद्रदेव तथा मित्र अय्यलार्य

इसके रचयिता माने जाते हैं। काव्य दक्षता में प्रबल होने के कारण भास्कर-के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बहुकृत होने के कारण समस्त-काव्य में शैली एक जैसी नहीं है, फिर भी सामान्य पाठक को विशेष अन्तर दिखाई नहीं पडता। तेलुगु में प्राप्त सब रामायणों में यह अति प्राचीन है। विपुल काव्य परम्परा में यह प्रथम है और तेलुगु प्रान्त में इसका बहुत प्रचार है। इसकी रचना चार कवियों से होने पर भी काव्य शिल्प व सौन्दर्य में रसवत्ता एवं चतुरता है। कवि के स्वयं भक्त होने के कारण प्रसंगों के अनुसार-मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। भक्ति-क्षेत्र में यह काव्य उत्कृष्ट तथा पारायण योग्य ग्रंथ है।

कवि हुलक्कि भास्कर ने अपने राजा साहिणी मारना को काव्य का समर्पण किया जो तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दियों के सन्धिकाल में प्रभु था। कन्नड में 'हुलक्कि' का अर्थ ताम्बूल है। कविता कर प्रभु को प्रसन्न करके ताम्बूल से पुरस्कृत होने से भास्कर को (हुलक्कि) का बिरुद प्राप्त हुआ।

हुलक्कि भास्कर ने अरण्यकाण्ड और युद्ध काण्ड के ११३९ पद्यों की रचना मात्र की। प्रायः इनकी आज्ञा से पुत्र मल्लिकार्जुन भट्ट ने बाल और किष्किन्धा काण्डों की रचना की। शिष्य कुमार रुद्र देव ने अयोध्या काण्ड की, मित्र अय्यलार्य ने युद्ध काण्ड के शेष भाग की रचना की। भास्कर रामायण की भाषा संस्कृतनिष्ठ है। शैली द्राक्षापाक मिश्रित होते हुए भी कदलीपाक की बहुलता है।

वाल्मीकि रामायण की एकाध कथा को छोड देने पर भी उन्होंने अनेकानेक कथाओं को जोड़ दिया। क्योंकि यह यथातयानुवाद नहीं है। मूल कथा में भरत शत्रुघ्न मामा के घर जाते हैं। तब दशरथ अपनी वृद्धावस्था की बात कर राम के गुणों की चर्चा करते हैं और राम को राज्य भार सौंपना चाहते हैं। प्रजा भी राम की स्तुति करती है। वसिष्ठादि अभिषेक का प्रयत्न करते हैं। सुमंत्र के द्वारा दशरथ दूसरे दिन के लिए राम और सीता को उपवास रखने की आज्ञा देते हैं। सब खुश होकर चले जाते हैं। तब राम को बुलाकर दशरथ अपने बुढापा, दुःस्वप्न और दैवज्ञों के द्वारा दुष्फलों की वार्ताएँ आदि कहता है। इस भाग का वर्णन मूल में लगभग दो सौ श्लोकों में है तो भास्कर ने नौ पद्य और एक वचन (गद्य) में समाप्त कर दिया है। मूल में मन्थरा कैकई के साथ आने वाली ज्ञातिदासी मात्र है तो भास्कर रामायण में राम पर कुपित तथा बचपन में राम के चरण ताड़न के कारण वैर रखनेवाली मन्थरा का वर्णन किया गया है।

वनगमन के सन्दर्भ में गंगा तट पर सीताराम निद्रामग्न हैं। तब रक्षा करते हुए गुह (केवट) और लक्ष्मण संभाषण करते हैं। तब लक्ष्मण चौदह वर्ष निद्रा को त्यागकर सेवा करने का व्रत धारण की प्रतिज्ञा करता है। मूल में प्रतिज्ञा की बात नहीं है, जो इसमें सुन्दर ढंग से जोडी गयी है। प्रायः इसका आधार अध्यात्म रामायण है। लक्ष्मण के द्वारा जम्बुकुमार का वध भी ऐसा ही प्रसंग है। जम्बुकुमार के वध के कारण ढूँढते हुए शूर्पणखा का राम के यहाँ आजाना युक्ति संगत है। इतना ही नहीं पुत्र शोक को भी भूल जानेवाली कामुकी शूर्पणखा की राक्षसी प्रवृत्ति की सूचना मिल जाती है। इस प्रकार मूल में अप्राप्त कई प्रसंग तथा वर्णनों को प्रसन्नराघवादि ग्रंथों के श्लोकों के अनुवादों को समुचित स्थानों में रखकर भास्कर ने शोभा बढाई। रामकथा को कहीं कहीं संक्षेप अथवा विस्तृत कर अपनी रुचि के अनुकूल कवियों ने रामायण की रचना की है।

एर्राप्रगड रामायण :—

महाभारत की रचना करने वाले कवित्रय में एर्राप्रगड एक हैं। उन्होंने एक रामायण की रचना की किन्तु खेद है कि वह नष्ट हो गई है। इसके पद्य यत्र–तत्र लक्षण ग्रंथों में प्राप्त हो जाते हैं।

गोपीनाथ रामायण :—

कर्ता गोपीनाथ वेंकटकवि, जो सिंहपुर का निवासी है। यह वाल्मीकि रामायण का 'अन्यूनातिरिक्त' अनुवाद है। तेलुगु में महाभारत तथा महाभागवत की भांति यह रामायण भगवान के नाम अंकित (समर्पित) नहीं है। अतः पूर्व रामायणों में कुछ न्यून तथा कुछ अतिरिक्त रुप से मूल का अनुसरण किया गय। इस रचना का यही उद्देश्य है। यह काव्य कृष्णांकित है। भास्करादि रामायण में मूल का समग्र अर्थ कथित नहीं है, इस दृष्टि से गोपीनाथ रामायण का महत्व बढ जाता है।

रामायण के षट्काण्ड ही अनूदित हैं। ग्रंथ के आदि में एक स्वप्न वृत्तांत है। कवि ने वाल्मीकि की स्तुति की तो प्रत्यक्ष होकर उन्होंने ग्रंथ रचना का ब्रह्मज्ञान प्रसादित किया। परिपूर्ण निष्ठा के साथ मूल का अनुसरण करने के प्रयत्न में इसकी कीर्ति बढी।

यथा वाल्मीकि रामायण :—

कर्ता धनगिरि रामकवि है। वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड के ७६ वें सर्ग तक १२ आश्वासों में अनूदित है। यह अपूर्ण रचना है।

आन्ध्र वाल्मीकि रामायण :—

कर्ता श्री वाविलि कोत्मनु सुब्बारावजी हैं। इस ग्रंथ के कारण आप (आन्ध्र वाल्मीकि) कहलाये। मद्रास के प्रेसिडेन्सी कालेज में तेलुगु के प्राध्यापक थे। आपने उत्तरकाण्ड को मिलाकर कुल सात काण्डों का अनुवाद किया है। इसका रचना काल ई १९००–१९०८ है। गायत्री मंत्र, राम षडक्षर इत्यादि मूल के अनुसार अनूदित हैं। मूल के बीजाक्षर इसमें निक्षिप्त हैं। भास्कर रामायण के बाद इसका ही बहुत प्रचार है। यह अनुवाद होते हुए भी स्वतंत्र काव्य जैसा भासित है।

विपुल काव्य परम्परा में आज भी रामायणों की रचना हो रही है। आधुनिकों में जनमंचि शेषाद्रिशर्माजी ने 'धर्मसार रामायण' की रचना की। श्री विश्वनाथ सत्यनारायणजी ने 'श्री मद्रामायण कल्पवृक्ष' नाम से रामायण की रचना की जिसको ज्ञान पीठ का पुरस्कार प्राप्त हुआ है।[1] आधुनिक काल में तेलुगु में रामायण की रचना करने वाले अनेकानेक कवि हैं। अस्तु।

संक्षेप काव्य परम्परा :—

वाल्मीकि रामायण को सीमित आश्वासों में अपनी रुचि के अनुकूल, प्रसंगों को घटा बढाकर लिखे गये संक्षिप्तरूप रामायणों का परिचय संक्षेप काव्य परम्परा के अन्तर्गत दिया जाता है।

रामाभ्युदयमु :–

संक्षेप काव्य परम्परा में यह अग्रगण्य है। कर्ता अच्चल राजु रामभद्र कवि (सन् १५१०-१५८०) है। काव्य का रचना काल सन् १५५० माना जाता है। श्री कृष्णदेवराय के 'भुवनविजय' नामक कवि परिषद के अष्ट दिग्गजों में रामभद्र भी एक हैं। आपने इसे अलिय रामरायलु के भानजे गोब्बूरि नरसराजु (श्री रायलु का भानजा) को समर्पित किया। यह प्रौढ काव्य है। उत्तरकाण्ड इसमें नहीं है। 'रामाभ्युदय' भगवान राम के चरित्र को

---

१. रामायण कल्पवृक्ष' पर एक विशेष निबन्ध इस संकलन में है।

कोमल तथा सुकुमार तेलुगु भाषा की मिठास से रसान्वित करनेवाला मधुर काव्य है।

मोल्ल रामायणमु :–

मोल्ल ने प्रधान कथांशों को लेकर रामकथा को संक्षेप कर लिखा। यह काव्य 'मोल्ल रामायण' के नाम से प्रसिद्ध छः काण्डों का पद्यकाव्य है। मोल्ल ने अपने काव्य में स्वीकार किया कि गोपवरम के श्री कण्ठमल्लेश्वर-स्वामी के प्रसाद से कविता-सम्पदा की प्राप्ति की। आन्ध्र देश में अनेक गोपवरम हैं। अतः मोल्ल का जन्मस्थान व जीवनकाल का निर्णय करना कठिन हो गया है।

कहा जाता है कि मोल्ल ने कुम्भकार के घर में जन्म लिया था। साधारण परिवार से जन्म लेकर उन्होने रामायण की रचना की। इससे यह विदित होता है कि तत्कालीन समाज कितना सुव्यवस्थित था। धार्मिक-दृष्टि से वीरशैव, शैव तथा अद्वैत के आवेश कुछ कम होते जा रहे थे और शैव-वैष्णव में समरसता आ गयी थी। राजनैतिक उलट फेर भी इसके कारण भूत हैं। फिर भी समाज ने मोल्लांबा को खूब सताया। नीच जाति की स्त्री होने के कारण न वह मन्दिर में प्रवेश कर सकती थी, न रामायण की रचना। जन-श्रुति है कि मोल्ल ने शपथ लेकर सात दिनों में सात खण्डों की रचना कर दिखाया। समाज की दुष्ट शक्तियों ने कुपित हो मोल्ल के सामने ही उसके पिता का वध किया था। इन संकटों में भी मोल्ल ने राम नाम के सहारे अविचल होकर रामायण को पूरा किया।

मोल्ल की भक्ति माधुर्य भाव की है। उनके आराध्यदेव श्रीरामचन्द्र हैं। एक सरल गोपिका के रुप में मोल्ल ने मर्यादा पुरषोत्तम रामचन्द्र के चरणों में अपूर्व रीति से समर्पण किया। रामभक्ति काव्य में मधुर उपासना का यह अपूर्व प्रयत्न है। मोल्ल के पिता (केसन) गुरु लिंगजंगम[1] शिव के भक्त तथा मोल्ल के आराध्य प्रतापगुण सागर श्रीरामचन्द्र इस प्रकार पिता पुत्री के अन्तर तल में शिव–केशवाद्वैत भक्ति निहित थी।

---

१. नीच जाति के लोग जब शैव धर्म स्वीकार करते तब 'जंगम' कहलाते थे और वैष्णव बनते तो 'सातानि' नाम से अभिहित होते थे, जो जातियाँ आज भी आन्ध्र में विद्यमान हैं।

रघुनाथ रामायण :–

तंजाऊर का राजा रघुनाथ नायक की यह रचना मूल रामायण का चार आश्वासों में संग्रह रूप है। खेद की बात है कि तीन आश्वास ही उपलब्ध हुए। शृंगार तथा हास्यरस के लिए ऋष्यशृंग का प्रसंग पठनीय है। इसमें तत्कालीन सामाजिक जीवन का जीता जागता चित्रण हुआ है।

इनके अतिरिक्त तेलुगु में अनेकों संग्रह रामायण प्राप्त है। उनमें अनन्तराजु जन्नय्या कृत 'रामकथाभिरामम्'(दस आश्वासों का ग्रंथ), मिक्किलि मल्लिकार्जुन कृत रामचन्द्रोपाख्यान, सात आश्वसों का निर्वचन प्रबन्ध, चित्र कवि वेंकट कवि कृत रामायण इत्यादि प्रसिद्ध हैं।

प्रबन्ध काव्य परम्परा :–

संक्षेप करने में किंचित् स्वतंत्रता तथा प्रबन्धात्मकता इनके लक्षण हैं। इस परम्परा के अन्तर्गत अनेक काव्य गणनीय हैं।

पट्टाभिराम विलासमु :–

कर्ता नागलिंग कवि हैं, जो शैव ब्राह्मण हैं। कृतिपति मानूरि वेंकट रामनाथ के लिए तथा उनके द्वारा कोंडवीडु के समीप हेबु गणेशपेट में श्रीराम की प्रतिष्ठा के लिए कथित यह रामकथा है।

रामचन्द्रोपाख्यानम् :–

कर्ता वारणासि वेंकटेश्वर कवि है और यह काव्य पिठापुरम के कुक्कुटेश्वर स्वामी को समर्पित है। यह छः आश्वासों का सुन्दर प्रबन्ध है।

दाशरथी विलासमु :–

कोत्तपल्लि लच्चय्या कृत सात आश्वासों का प्रबन्ध है। यह काव्य तिरुपति वेंकटेश्वर कवियों को अंकित है।

शृंगार राघवमु :–

चेरुकुमूडि कृष्ण कवि की यह रचना सीतापहरण से समाप्त असंपूर्ण काव्य है। यह रसवत्कविता काटेपल्लि अय्यनार्य के पुत्र नारायण मंत्री को अंकित है।

रघुराम विजयमु :–

भावन कवि कृत आठ आश्वासों का यह प्रबन्ध अल्लेपूडि राजगोपाल

स्वामी को अंकित है। इसमें स्कन्दपुराण के आधार पर रामकथा का वर्णन हुआ है।

दशरथराजनन्दन चरित्र :–

कर्ता मरिंगटि सिंगराचार्य जी हैं। आंध्र साहित्य का यह सर्व प्रथम तत्सम निरोष्ठ्य काव्य है। इतना ही नहीं यह कवि निरोष्ठ्य, शुद्धान्ध्र शुद्धान्ध्रनिरोष्ठ्य रचना तथा त्र्यर्थी काव्य रचना में आद्य माने जाते है। ये सोलहवीं शती के उत्तरार्द्ध के माने जाते हैं। इस काव्य की विशिष्टता यह है कि कर्तृनाम निरोष्ठ्य है तथा काव्य भी निरोष्ठ्य। इसके अतिरिक्त यह मानव को समर्पित नहीं है,अनावश्यक वर्णन भी नहीं हैं। इसके प्रभाव से तेलुगु में निरोष्ठ्य काव्य रचना की परंपरा ही चल पडी।[1] सिंगराचार्य कृत निरोष्ठ्य सीता कल्याण भी प्राप्त है।

मूल में अप्राप्त कई कथाओं को (जनता में प्रचलित होने के कारण) कवि ने अपने काव्य में प्रवेश कर लिया। अहल्या के शाप वृत्तान्त का प्राय: तेलुगु के सब कवियों ने लिया है जो मूल में नहीं है।[2] कुछ कबियों ने तो इस वृत्तांत पर आश्वास व खण्ड काव्य ही लिख दिये है। प्राय: यह अध्यात्म रामायण का प्रसाद है। राम रावण के युद्ध प्रसंग में पेट में अमृत भाण्ड के कारण रावण नहीं मरता इसका वर्णन है, जो मूल में नहीं है। भास्कर, रंगनाथ आदि के अनुसार सिंगराचार्य ने इसे स्वीकार किया है। आधुनिकों में श्री विश्वनाथ सत्यनारायण ने अपने रामायण कल्पवृक्ष में इसे छोड दिया है। सिंगराचार्य ने कुछ प्रसंग छोड भी दिये हैं। यथा दशरथ को मुनि का शाप, मृत्यु के पश्चात् दशरथ को तैलभाण्ड में रखना इत्यादि। कैकई के वर मांगने वाले प्रसंग को इन्होंने संक्षिप्त किया और उसमें मन्थरा का नाम भी नहीं है। इस प्रकार तेलुगु के कवियों ने अपने स्वतन्त्र स्वभाव व चिन्तन का परिचय दिया है।

---

१. निरोष्ठ्य काव्य में ओष्ठ्य (प, फ, ब, भ, म), अन्तस्थ में ओष्ठ्य स्पर्शाक्षर व, स्वरों में ओष्ठ्य (उ, ऊ, ओ, औ,) आदि वर्जित हैं। स्वरों में (अ, आ, इ, ई, ए, ऐ) और इनके सन्निहित व्यंजन तथा नियम के अन्तर्गत कुछ ध्वनियों की सहायता से निरोष्ठ्य रचना की जाती है।

२. श्रीमद्वावाल्मीकि रामायण, बाल काण्ड, सर्ग ४८, श्लोक ३२, ३३, ३४,।

सीता चरित्रमु :–

रावुचेल्लयामात्य का पुत्र अप्पल राजु कृत यह पांच आश्वासों का प्रबन्ध काव्य है।

श्रीराम चरित्रमु :–

इसके कर्ता नंडूरि बाप मन्त्री हैं। यह काव्य अपूर्ण रूप से प्राप्त है।

सांख्य रामायण :–

चेन्न कृष्णय्या कृत अपूर्ण प्रबन्ध है।

राम विलासमु :–

इसके कर्ता एनुगु लक्ष्मण कवि हैं। यह काव्य वत्सवाय गोपराजु को समर्पित है।

सीताराम विलासमु :–

मन्त्रिप्रगड सूर्यप्रकाश कवि की यह रचना छः आश्वसों का प्रबन्ध है। इसका रचनाकाल सन् १८५१–५२ माना जाता है।

लक्ष्मण विजयमु :–

इस कृति का नाम लक्ष्मण विजय होने पर भी आठ आश्वासों में रामकथा ही कही गई है। रचयिता बेहरा रामकृष्ण कवि है।

अनर्घराघवमु :–

तिम्मभूपाल ने संस्कृत नाटक अनर्घराघव का पांच आश्वासों में अनुवाद कर, प्रबन्ध काव्य का रूप दिया है।

प्रबन्ध काव्य परम्परा में अनेक रामायण प्राप्त होते हैं और आज भी रचे जा रहे हैं। अतः कतिपय प्रसिद्ध प्रबन्धों का उल्लेख मात्र कर, सन्तुष्ट होना पड रहा है। अस्तु !

कल्याण[1] काव्य परम्परा :–

मंगलादीनि मंगलमध्यानि मंगलांतानि (काव्यानि)–भारतीय कविकुल

---

१. तेलुगु में कल्यण का अर्थ विवाह है।

सम्प्रदाय के अनुरूप विविध भाषा साहित्यों में परिणय काव्य परम्परा का समादर है। तेलुगु साहित्य में अनेकों कल्याण काव्य प्राप्त हैं। भारत भागवतादि में सुभद्राकल्याण, रुक्मिणी कल्याण आदि के पठन–पाठन की रीति है। इसी प्रकार रामकथा के सीता कल्याण प्रसंग को लेकर अनेकानेक काव्यों का निर्माण हुआ।

सीता कल्याण :–

पिडुमर्ति वसवप्प कवि (वसवन्न का पुत्र) ने सीता कल्याण नाम से निरोष्ठ्य पद्यप्रबन्ध की रचना की किन्तु दुर्भाग्य से प्रथम चार आश्वास ही प्राप्त हैं।

जानकी राघवमु :–

वेतपूडि कृष्णय्या की यह रचना पाँच आश्वासों में सम्पूर्ण रूप से प्राप्त है। यह कृति अड़पा नारप्पा को समर्पित है।

जानकी परिणयमु :–

यह कृति कूचिमंचि जग्गकवि की है।

सीता कल्याणमु :–

यह निरोष्ठ्य रामायण मरिंगंटि सिंगराचार्य कृत है। यह तीन आश्वासों का लगभग तीन सौ पद्यों का काव्य है, फिर भी सम्पूर्ण रामकथा संक्षेप में है। इसमें ठेठ तेलुगु का ही प्रयोग किया गया है।

शुद्धान्ध्र (ठेठ तेलुगु) रामायण परम्परा :–

दशरथ राज नन्दन चरित्र तथा सीता कल्याणमु दोनों काव्य मरिंगंटि सिंगराचार्य के द्वारा ठेठ तेलुगु में विरचित निरोष्ठ्य रामायण हैं।

अच्च तेलुगु (ठेठ तेलुगु) रामायण के कर्ता कूचिमंचि तिम्मकवि हैं। ठेठ तेलुगु में रचित होने पर भी शैली कुंठित न होकर सरस है। यह बहुत संक्षिप्त रूप में है। सुलोचना प्रसंग और लक्ष्मण की हँसी प्रसंगों को छोड कर रंगनाथ के अवाल्मीकीय सब प्रसंगों को इसमें स्थान दिया गया है।

द्विपद रामायण परम्परा :–

'द्विपद साहित्य' तेलुगु साहित्य की एक विशिष्ट प्रक्रिया के रुप में

विकसित तथा प्रसिद्ध है । द्विपद मार्ग (शास्त्रीय) और देशी में देशी के अन्तर्गत आता है ।

रंगनाथ रामायण :–

रंगनाथ रामायण के कर्तृत्व के विषय में विवाद है । अन्तः साक्ष्य के आधार पर कर्ता बुद्धारेड्डी माने जाते हैं । इनका जन्म काल सन् १२७० ई. तथा रचना काल सन् १३१०-२० ई. माना जाता है । वाल्मीकि रामायण के अनुसार रचित यह स्वतंत्र अनुवाद है । विद्वान इसे तेलुगु का प्रथम राम काव्य मानते हैं । काव्य-शैली, काव्य-गौरव के कारण तेलुगु साहित्य में इसका विशिष्ट स्थान है । गम्भीर, उदात्त वर्णनों से काव्य रम्य है ।

रंगनाथ रामायण में अवाल्मीकीय प्रसंग सुन्दर रुप में सम्मिलित किये गये हैं । चित्र शुद्धि से जो सेवा की जाती है, उसे तेलुगु जनता गिलहरी की भक्ति कहती है । तेलुगु में यह कहावत रंगनाथ रामायण में सेतु बन्धन प्रसंग में सेवा करनेवाली गिलहरी के कारण प्रचलित हुई । इसी प्रकार 'उर्मिला की निद्रा' 'लक्ष्मण की हँसी' आदि लोक गीतों के बीज इसी रामायण में प्राप्त होते हैं, जिनको तेलुगु जनता आज भी चाव से गाती है । जंबुमाली वृत्तान्त. सती सुलोचना वृत्तान्त आदि आवाल्मीकीय प्रसंग भी जोड़ दिये गये हैं । इस प्रकार रंगनाथ रामायण द्विपद शैली में सरल तथा भक्ति का सर्वोत्-कृष्ट उदाहरण बनकर आन्ध्र जनता का कण्ठहार बन गया है ।[1]

द्विपद रामायण :–

कर्ता कट्टा वरद राजु है । (सन् १६००-१६५०) । वाल्मीकि के अनुसार होने पर भी कवि ने स्वेच्छा से कुछ घटनाओं को जोड़ दिया है । रंगनाथ के कुछ अवाल्मीकीय प्रसंगों को इसमें स्थान नहीं दिया गया है । अहल्या का शिला वृत्तान्त अवाल्मीकीय होने पर भी रंगनाथ और भास्कर के अनुसार इसमें स्वीकार किया गया है । वरदराजू ने कई मार्मिक प्रसंगो को जो मूल में नहीं है, जोडकर 'जातिवार्ता चमत्कार'से भर दिया है। यह काव्य श्री वेंकटेश्वर स्वामी को समर्पित है ।

---

१. रंगनाथ रामायण पर एक विशेष लेख इसी संकलन में है ।

द्विपद रामायण :-

खेद की बात है कि ताल्लपाक अन्नमाचार्य (सन् १४०८-१५०३ ई.) का रचा यह काव्य प्राप्त नहीं हुआ है।

एकोजी रामायण :-

एकोजी तंजाऊर के राजा तुलजाजी (शासन काल सन् १७२९-१७३६ ई.) का पुत्र है। एकोजी ने एक वर्ष (१७३५-३७ ई.) तक तजाऊर पर शासन किया। इन्होंने द्विपद में रामायण का यथामूल अनुवाद कर अपने पिता को समर्पित किया। यह ग्रंथ पूर्ण रूप में प्राप्त है।

वासिष्ठ रामायण :-

तरिगोंडा वेंकमाम्बा ने संस्कृत के वेदान्त ग्रंथ वासिष्ठ रामायण का तेलुगु के द्विपद छन्द में अनुवाद किया।

उपरोक्त काव्यों के अतिरिक्त कई काव्यों के अन्त: साक्ष्य के आधार पर कई अन्य रामायणों का उल्लेख मिलता है जो अभी तक अप्राप्त है या नष्ट प्राय हो गये हैं।

श्लेष काव्य परम्परा :-

दो अर्थों वाले एक पद्य की रचना करना ही चमत्कार है। तब समग्र श्लेष काव्य की रचना सुन्दर क्यों न होगी ? ऐसी चमत्कार प्रधान भावना ही श्लेष काव्य की रचना की मूल प्रेरणा है। तेलुगु कवियों की विशेषता यह है कि उन्होंने द्वयर्थी ही नहीं त्र्यर्थी, चतुरर्थी काव्यों का निर्माण भी किया।

राघव पाण्डवीयमु :-

पिंगलि सूरनकृत 'राघवपाण्डवीय' काव्य द्वयर्थी काव्य है, जिसमें रामायण तथा महाभारत की कथा श्लेष के आधार पर एक साथ वर्णित है। संस्कृत 'राघवपाण्डवीयम्' के अनुरुप तेलुगु में द्वयर्थी त्र्यर्थी काव्य लिखे गये। सूरनकृत राघवपाण्डवीय चमत्कार प्रधान कवि की प्रतिभा को दर्शानेवाला है।

अचलात्मजा परिणयमु :-

द्वयर्थी में यह सीता और पार्वती के परिणय का वर्णन करनेवाला काव्य है किन्तु इसके तीन आश्वास ही प्राप्त हैं।

यादवराघव पाण्डवीयमु :–

यह एलकूचि बाल सरस्वती कृत त्र्यर्थी काव्य है। इसमें एक साथ भागवत, रामायण, भारत की कथाएँ कही गयी हैं।

यादवराघव पाण्डवीयमु के नाम से नेल्लूरि वीर राघव कवि तथा अय्यगारि वीर भद्रकवि के रामायण भी प्राप्त है।

रामकृष्णोपाख्यानमु :–

राम तथा कृष्ण-कथा को लेकर श्रीपाद वेंकटाचलपति ने द्वयर्थी काव्य का निर्माण किया।

राघववासुदेवीयमु :–

यह चित्र कवि विरुदांकित कोत्तपल्लि सिंगराचार्य का पाँच आश्वासों का काव्य है। इसमें राम तथा कृष्ण की कथा एक साथ वर्णित है।

चम्पू काव्य परम्परा :–

तेलुगु में राम साहित्य की प्रधान शैली चम्पू शैली है। इसमें संस्कृत के अनुसार गद्य और पद्य का समावेश है। भास्कर रामायण, मोल्ल रामायण, रामाभ्युदयमु, उत्तर रामायण, रघुनाथ रामायण आदि प्रमुख ग्रंथ चम्पूकाव्य के अन्तर्गत ही आते हैं। इन काव्यों में अनेक संस्कृत और देशी छन्दों का प्रयोग हुआ है। इस परम्परा पर भोजराज की चम्पूरामायण का प्रभाव है। अतः अब विशेष रुप से संस्कृत चम्पूरामायण के अनुवादों का उल्लेख किया जाता है।

चम्पू रामायण :–

बुलुसु सीताराम कवि ने भोज के चम्पू रामायण का अनुवाद सुन्दर पद्य काव्य के रुप में किया है।

अभिषिक्त राघवमु :–

नडिमिटि वेंकटपति ने भोजचम्पू का अनुवाद कर मट्लवेंकट रामभूपति को समर्पित किया। इस काव्य के केवल अवतरणिका भाग तथा कथा के पांच पद्यमात्र प्राप्त हैं।

चम्पू रामायण :–

यह कृति ऋग्वेदम् वेंकटाचलपति की है। श्रीमदान्ध्र चम्पू रामायण

आधुनिकों में पूसपाटि रंगनायक ने भोज के चम्पू रामायण के पांच काण्डों तथा लक्ष्मणसूरि कृत युद्धकाण्ड का अनुवाद किया।

विचित्र रामायण :-

इस शीर्षक के अन्तर्गत ऐसे काव्यों का उल्लेख किया जाता है जिनमें कवियों ने रामकथा के एकाध अंश को लेकर विचित्र दृष्टि से तो डमरोड़कर काव्य रूप दिया है।

गोपीनाथ रामायण :-

उडिया भाषा में सिद्धेश्वर योगी ने रामायण लिखा था। तेलुगु में इसका अनुवाद गोपीनाथ ने किया। यह गद्य रचना है। इसी के आधार पर कई विचित्र रामायण पद्य-कृतियाँ प्राप्त हैं।

गोपीनाथ के गद्य काव्य के आधार पर सोमनाथ शिल्पाचार्य ने पद्य काव्य बनाया और इसके आधार पर अनेक पद्य काव्य बनाये गये।

शतकण्ठ रामायण :-

शतमुख रामायण, सीता विजय इसके नामान्तर हैं। सीता के द्वारा शतकण्ठ रावण का वध किया जाना इसकी कथावस्तु है। मर्दन कवि ने इसकी रचना की। लिंगन नामक कवि ने इसी नाम से चार आश्वासों में एक काव्य लिखा।

सीता विजय :-

इस काव्य के कर्ता का नाम अज्ञात है। इसी नाम से रंगय्या कवि ने और एक काव्य का निर्माण किया था।

इसी नाम के एक अन्य काव्य के रचयिता पेनुमल्ला बापय्यामात्य है। कौशिकी तट पर स्थित विष्णु संवेद्य क्षेत्र माहात्म्य पर आधारित यह ग्रन्थ अप्राप्य है।

अद्भुत रामायण :-

यह काव्य वाल्मीकि प्रोक्त सीता माहात्म्य का तेलुगु अनुवाद है। कृति का अवतरणिका भाग तथा अन्तिम भाग प्राप्त नहीं हैं। इसके रचयिता मुडुबि कृष्णय्या माने जाते हैं।

अध्यात्म रामायण :–

संस्कृत में विश्वामित्र विरचित अध्यात्म रामायण के कई अनुवाद तेलुगु में प्राप्त होते हैं। ये सब काव्य वेदान्तार्थ–प्रतिपादक हैं। कणाद पेद्दन्न सोमयाजि–(सन् १७७५–१८००) कृत अध्यात्म रामायण प्रसिद्ध है। कोटमराजु नागय्यामात्य कृत अध्यात्म रामायण में किष्किन्धा काण्ड तक ही प्राप्त है। कंचर्ल शरभन्न का अध्यात्म रामायण उपसब्ध है। संकीर्तन के रूप में सुब्रह्मण्य कवि ने अध्यात्म रामायण का निर्माण किया किन्तु युद्ध काण्ड मात्र प्राप्त है। खेद की बात है कि इस परम्परा के अनेक काव्य या तो अप्राप्य हैं या खण्डित व जीर्णावस्था में प्राप्त हैं।

वासिष्ठ रामायण :–

संस्कृत के ज्ञानवासिष्ठ का यह अनुपम अनुवाद है जो मडिकि सिंगन से किया गया है। वेदान्त प्रतिपादक संस्कृत ग्रंथ को आपने संक्षेप तथा सरल बनाया है। सोलहवें साल में राम की तत्त्व जिज्ञासा की पूर्ति के लिए विश्वामित्र की इच्छा से वसिष्ठ से दिया गया तत्त्वोपदेश इसकी वस्तु है। मडिकि सिंगन के पद्म पुराणोत्तर खण्ड में भी रामकथा वर्णित है। कृष्णगिरि वेंकट रमण कवि ने ज्ञानवासिष्ठ का तेलुगु में अनुवाद किया है।

तारक ब्रह्मराजीयमु :–

संस्कृत में प्रयाग नारायणाश्रमी कृत इसका अनुवाद चिन्तलपूडि राधामाधव कवि ने किया है। राधामाधव काव्य की रचना कर आप श्री कृष्णदेवराय द्वारा राधामाधव बिरुदांकित हुए।

इसके अतिरिक्त खण्ड काव्य आख्यान व एक आश्वास के रूप में लिखे गये राम काव्यों की संख्या पर्याप्त है।

एर्रा प्रगड कृत महाभारत का रामोपाख्यान तथा पोतना कृत महाभागवत का श्री रामचरित इस संदर्भ मेंउल्लेखनीय हैं।

आधुनिक भारतीय भाषाओं से अनुवाद

रामचरितमानसमु :–

तुलसीदास कृत रामचरितमानस का यह तेलुगु अनुवाद है। कर्ता शिष्टुकृष्णमूर्ति शास्त्री तथा मंडा नरहरि या कामय्या हैं। कवियों ने तेलुगु भाषा में हिन्दी छन्द-दोहा, चौपाई-का प्रयोग दक्षता के साथ किया ही नहीं

अपितु सम्पूर्ण काव्य को उन्हीं छन्दों में पूरा किया है। नये प्रयोग को लिये हुए तेलुगु साहित्य की यह मधुर कृति है।

द्विपद रामायणमु :–

पंडित राधेश्याम के रामायण का यह स्वतंत्रनुवाद है। करीमनगर जिला के वेमुलवाडा के निसासी मधुरकवि मामिडिपल्लि साम्बशिव शर्मा ने द्विपद छन्द में पाँच काण्डों में इसका अनुवाद किया किन्तु सुन्दरकाण्ड मात्र मुद्रित है।

कम्बरामायणमु :–

तमिल में कम्बन कृत रामायण का अनुवाद तेलुगु में पूतल पट्टु श्रीरामुलु रेड्डी ने किया। वाल्मीकि रामायण तथा इसमें पर्याप्त अन्तर है। कथावर्णनों तथा घटनाओं के संयोजन की दृष्टि से यह रसवत्तर काव्य बन पड़ा है।

पट्टाभि रामायणमु :–

आदि और अन्त में श्रीराम पट्टाभिषेक का वर्णन होने के कारण काव्य का यह सार्थक नाम है। प्रधान रूप से इसमें उत्तर काण्ड की कथा है। कर्ता घट्टु वेंकटराम कवि है। आपकी कविता ललित है। शठगोपाचारी कृत पट्टाभिरामायण भी प्राप्त है।

इनके अतिरिक्त तत्वसंग्रह रामायण, तारक ब्रह्म रामायण, सहस्रकंधर रामायण (दण्डक) इत्यादि अनेक रामायण भी प्राप्त हैं।

उत्तर रामायण की परम्परा :–

निर्वचनोत्तर रामायण :–

कविब्रह्म के तिक्कना ने अपने काव्य में गद्य का प्रयोग न करते हुए उत्तर रामायण की रचना की है। अपने पूर्ण रामायण में राम को मानव के रूप में प्रस्तुतकर उत्तर काण्ड में इनके दिव्यत्व के आरोपण से कुछ विद्वान् इसे प्रक्षिप्त मानने लगे किन्तु तिक्कना ने अपने काव्य में राम को आदर्श राजा तथा उत्तम मानव के रूप में ही चित्रण किया है।

उत्तर रामायण :–

तिक्कना से छोड़ दिये गये अंश को एक आश्वास में पूरा किया जयन्ति

राम भट्ट ने। इसमें यत्र-तत्र गद्य है। यह भद्राद्रि रामभद्र को समर्पित है।

उत्तर रामायण :–

कंकंटि पापराजु (सन् १७८५–१८००) कृत है। इसमें कुछ द्वयर्थी पद्य तथा ठेठ तेलुगु में लिखे पद्य भी हैं। यह प्रौढ गद्य तथा रसवत्कविता से पूर्ण मधुर प्रबन्ध है। यह मदन गोपालस्वामी को समर्पित है।

रंगनाथ रामायण :–

उत्तर रामायण को गोनबुद्धारेड्डी के पुत्र काचभूपति और विठलराजु ने पूरा किया। पूर्व तथा उत्तर रामायण की शैली में विशेष अन्तर नहीं है।

मैरावण चरित्र :

यह माडया कविकृत चम्पू काव्य है। कृत्यवतरणिका को छोड शेष-ग्रंथ प्राप्त है। युद्ध भूमि में निद्रित रामलक्ष्मण को मैरावण उठा ले जाता है। उनका वध कर हनुमान रामलक्ष्मण को छुड़ा लाता है। इसमें हनुमान के पराक्रम का वर्णन है। तंजाऊर के पुस्तक भण्डार में कृत्यवतरणिका भी है। यह काव्य लेजेल्ल गोपामात्य को अर्पित है। इतिहासकारों ने माडया कवि को अठारहवीं शती का माना है।

मैरावण चरित्र :–

काचन नामक ब्राह्मण ने मंजरी द्विपद छन्द में हनुमान के द्वारा मैरावण के सताये जाने की कथा लिखी है। सम्पूर्ण ग्रंथ प्राप्त है।

हनुमद्विजय :–

पातूरि अम्मयामात्य के पुत्र तिरुमलय्या ने मैरावण चरित कथा को ही द्विपद छन्द में लिखा।

यक्षगान काव्य परम्परा :–

यक्षगान नाटकीय काव्य है। साहित्य की यह विधा तेलुगु साहित्य की एक प्रमुख प्रक्रिया है।

सुग्रीव विजयमु :–

कंदुकूरि रुद्रकवि कृत यह यक्षगान तेलुगु यक्षगान साहित्य में सर्व प्रथम कृति है, जो अपनी विशेषता के कारण पंडित–पामर जनों का समादर

प्राप्त कर लोक प्रिय बनी ह। इसमें श्रीरामचन्द्र का शोक तथा बालि-सुग्रीव-युद्ध का करुण तथा वीर रस युक्त वर्णन हुआ है।

लेपाक्षि रामायण :–

वेंकटनायक कवि ने षट्काण्डो में रामकथा को तीन रातों में प्रदर्शन योग्य यक्षगान का रूप दिया है और लेपाक्षीश्वर को अर्पित किया है। इसके पद्य भी लेपाक्षीश्वर को समर्पित हैं। इसमें कैकई के चरित्र को उजागर किया गया है।

यक्षगान साहित्य में अनेक रामायण प्रसिद्ध हैं। कोम्मलपाटि रामायण (सुन्दरकाण्ड), बोम्मलाट रामायण सीताकल्य।णमु, रामनाटक, विभीषण पट्टाभिषेक नाटक, कुशलव चरित्र, अध्यात्म रामायणमु, लक्ष्मण प्राण रक्षण, मैरावण चरित्र आदि आदि।

गुत्तेनदीवि रामायण :–

गुत्तेनदीवि हनुमान के नाम पर कथित इस यक्षगान के कर्ता का नाम अज्ञात है। प्रत्येक गीत के रागताल निश्चित हैं। वर्षा ऋतु में राम का विरह वर्णन सुन्दर बन पड़ा है। पचास कीर्तनों की यह मधुरधारासिक्त देशीय रचना है।

शारदा रामायण :–

'शारदा करुणा पयोनिधी' मुकुट वाले इस कृति का प्रत्येक पद्य सुन्दर है। कवि का नाम अज्ञात है, फिर भी अनुमानतः वेंकटेश्वर कवि कृत माना जाता है।

शतक, भजनगीत, कीर्तन परम्परा :–

तेलुगु साहित्य में मुक्तक शैली में शतक, भजन, गीत, कीर्तन-साहित्य विस्तृत रुप में प्राप्त है। रामदास और त्यागराज राम के प्रधान गायक हैं।

दाशरथी शतक :–

'दाशरथी करुणा पयोनिधी' मुकुट से सौ छन्दों के शतक का निर्माण भक्त रामदास (कंचर्ल गोपन्न) ने किया। राम को इष्टदेव मानकर उनकी स्तुति में इसकी रचना हुई। आपका जन्म सन् १६२० में खम्ममभेट जिले के

नेलकोंडपल्लि नामक गाँव में हुआ था। गोपन्ना गोलकोंडा के शासक तानाशाह के समसामयिक थे। रामचन्द्र के भक्त होने के कारण ये रामदास नाम से प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि सन्त कबीर से आपकी भेंट हुई थी और कबीर ने आपको 'रामतारक' मंत्र दिया था। यद्यपि राम की जीवनी को लेकर इन्होंने कोई काव्य नहीं लिखा, तथापि इनके भजन गीत आन्ध्र जनता के घर घर में आज भी गाये जाते हैं।

त्यागराज के भजनगीत :–

आपका उद्देश्य रामकथा को लिखना नहीं था, यद्यपि भजन-गीतों में राम-स्तुति ही की गयी है। कहा जाता है 'त्यागराजनुत' मुकुट से उन्होंने चौबीस हजार कृतियों का (पद) निर्माण किया। दुर्भाग्य से आज १००० संकीर्तन मात्र प्राप्त हैं। ५०० तक के रागताल निश्चित हैं। त्यागय्या की कृतियाँ मधुर तथा भावपूर्ण होती हैं।

इनके अतिरिक्त अय्यलराजु त्रिपुरांतकुडु की 'रघुवीर जानकीपति शतक' मुम्मिडिराजु मल्लनार्य कवि कृत 'रामस्तव राजमु' आदि अनेक शतक, स्तव, भजनगीत प्राप्त हैं।

सत्रहवीं शती में तेलुगु साहित्य में गद्य रचना का आरम्भ हुआ और उसे आदर भी प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् अनेक गद्य काव्यों का निर्माण हुआ। तुपाकुल अनन्त भूपालकृत वचन रामायण, पैडिपाटि पापय्या की रंगनाथ रामायण तथा श्यामराय की रामायण आदि प्रसिद्ध हैं।

तेलुगु में रामायण की परम्परा के अध्ययन से विदित होता है कि कवि संस्कृत तथा तेलुगु में प्रकाण्ड पंडित थे। सब ने वाल्मीकि रामायण का अनुसरण किया अथवा उस काव्य से प्रेरणा व स्फूर्ति प्राप्त कर काव्य-गान किया। तेलुगु कवियों ने मूल के अनुसरण में समुचित नहीं निष्ठा बरती, तथापि स्वतंत्र चिन्तन, परिष्कृत हृदय तथा बुद्धि कौशल का परिचय दिया। मूल से भी आगे बढकर निराले प्रसंगों को जोडकर काव्य को रम्य बनाया। प्रायः सबने भास्कर और रंगनाथ रामायण का अनुकरण किया, किन्तु प्रत्येक की अपनी अपनी विशिष्टता है। श्लेष काव्यों में द्वयर्थी, त्र्यर्थी और चतुरर्थी काव्य

का बुद्धि चमत्कार, पांडित्य-साधना शायद ही किसी भाषा साहित्य में प्राप्त हो। हिन्दी, तमिल, उड़िया रामायणों का अनुवाद करना कवि की बहु भाषाभिरुचि का परिचय देता है। रामचरित मानस का अनुवाद तेलुगु में दोहा चौपाई शैली में होना निश्चित ही विशेष बात है। यक्षगान काव्य तेलुगु साहित्य की विशेष विधा है जो पंडित पामर-जनों को पुनीत कर देती है। तत्त्व तथा वेदान्त परक रामायणों की कमी नहीं है। शतक, भजन, मधुर संगीत की कृतियाँ (गीत) विस्तृत रूप में उपलब्ध हैं।

'हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता', के अनुरुप ही तेलुगु के पंडित कवि, भक्त गायकों ने रामकाव्य निर्माण में, कथागान में अपने विशिष्ट स्वभाव तथा रुचि का परिचय दिया और दिल खोल कर राम के शक्ति शील-सौन्दर्य का वर्णन किया। अस्तु। रामकथा के सम्बन्ध में तुलसी के हृदय को स्पर्श करते हुए तेलुगु के भक्त कवियों ने इस उक्ति को सार्थक किया कि भारत की आत्मा तथा हृदय एक है।

" कल्पभेद हरि चरित सुहाये,
भाँति अनेक मुनीसन गाये। "

--:०:--

रंगनाथ रामायणमु

— डॉ० भीमसेन 'निर्मल'

इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं कि श्रीरामचन्द्र आन्ध्र जाति के प्रियतम भगवान हैं, परम आराध्य देव हैं। साहित्य में अथवा दैनिक जीवन में, जहाँ सुनिए, वहीं वह पवित्र नाम प्रतिध्वनित होता रहता है। श्री रामचंद्र ने वनवास के चौदह वर्षों में अधिक भाग दंडकारण्य-में आन्ध्र देश में, गोदावरी नदी के तट पर बिताया था। उस पावन स्मृति को जाग्रत करने वाले अनेक स्थान और चिह्न आन्ध्र देश में विद्यमान हैं। मर्यादापुरुषोत्तम की पुनीत गाथा का गान करने वाले महानुभावों से आन्ध्र साहित्य भरा पड़ा है। महाकाव्यों से लेकर, लोकगीतों तक में रामकथा उपलब्ध है। रामकथा से संबंधित रचनाओं की संख्या तीन-चार सौ भी अधिक है। यह इस बात को प्रमाणित करता है कि रामभक्ति तेलुगु जनता के हृदय को ही नहीं, बल्कि उनकी प्रतिभा पर भी अमिट छाप छोड़ चुकी है।' (विद्यारत्न श्री निडदवोलु वेंकटराव)

तेलुगु भाषा में उपलब्ध रामायणों में 'रंगनाथ रामायण' प्रथम तथा अत्यन्त लोकप्रिय रचना है। पाठ्य तथा गेय दोनों रूपों में मधुर यह रचना पंडित और पामर को भी प्रसन्न करने वाली है। राम के पुरातन इतिहास को इस रूप में काव्य बद्ध करने का श्रेय गोन बुद्धारेड्डी को है, जिन्होंने अपने पिता विठ्ठलनाथ के नाम पर इसे रचा था। स्वयं बुद्धारेड्डी ने अवतारिका में इस प्रकार लिखा है कि निखिल शब्दार्थ पाकज्ञ अत्यन्त पांडित्यधनी तथा रामायण के मर्म को जानने वाले अपने पुत्र को बुलाकर, विठ्ठलनाथ ने कहा था कि

'भूमि कवीन्द्रुलु बुधुलुनु मेच्च, रामायणंबु पुराण मार्गंबु
तप्पक ना पेर दग नंध्रभाष, जेप्पि प्रख्यातंबु सेयिंपुमुर्वि।'

(रामायण को पुराण-मार्ग के अनुरूप अवश्य ही मेरे नाम पर आन्ध्र भाषा में रचकर प्रसिद्ध कर दो जिसकी इस संसार में कवींद्र और विद्वान् प्रशंसा करें।)

तब बुद्धारेड्डी ने अपने पिता विठ्ठल क्ष्मानाथ (भूपति) के नाम पर, आदि कवीश्वर वाल्मीकि के कथनानुरूप श्रीराम-चरित्र की रचना की थी।

इस अन्त: साक्ष्य के बावजूद भी 'रंगनाथ' शब्द को लेकर, इस काव्य के रचयिता के संबंध में विद्वानों में काफी चर्चा हुई है। कुछ लोगों ने चक्रपाणि रंगनाथ को, जो कन्नड़ के प्रसिद्ध कवि थे, इस काव्य का कर्ता माना है। तेलुगु साहित्य के अनन्य सेवी सर सी० पी० ब्राउन का कथन है।

"This Translation of the Ramayana is always attributed to a poet named Ranganatha; but his name is nowhere mentioned in the book; while it is asserted in each volume that the author was Buddha Raj, who wrote it at the desire of his father Vitthal Raj. x x x This Ramayana is Vulgarly attributed to Ranganatha; but I can not discover the reason"

इस संदर्भ में डा० ऐ० पांडुरंगाराव जी की निम्न स्पष्टोक्ति समीचीन तथा तर्क संगत है।

'पिता की इच्छा के अनुसार बुद्धनाथ अपनी रामायण का नाम 'विठ्ठल नाथ रामायण' रख सकता था लेकिन 'निपुण मति' और 'निखिल शब्दार्थ मर्मज्ञ' होने के कारण बुद्धनाथ ने विठ्ठलनाथ के स्थान पर 'रंगनाथ' शब्द का प्रयोग करना अधिक उपयुक्त समझा था। वास्तव में विठ्ठलनाथ या पांडुरंग या रंगनाथ एक ही देवता के नाम हैं। अतः विठ्ठलनाथ के पर्यायवाची के रूप में 'रंगनाथ' शब्द को स्वीकार करने से पिता के आदेश का पालन तो हो ही चुका था और साथ ही एक अन्य प्रयोजन भी सिद्ध हुआ। श्री रंगधाम के प्रभु रंगनायक या रंगनाथ के नाम पर भी यह काव्य प्रचलित हो चुका है। कुछ पौराणिक प्रमाणों से पता चलता है कि रंगनाथ अयोध्यावासी दशरथ के कुल देवता थे।...गोन बुद्धभूपति याबुद्धनाथ ने अपने काव्य का नाम 'रंगनाथ रामायण' रखकर अपना औचित्य ही प्रकट किया।[1]

गोनवंश के राजाओं की परम्परा के विषय में गम्भीरता से शोध करने वाले कई विद्वानों के मतानुसार बुद्धारेड्डी का समय सन् १३६०–१३८० के आस-पास ठहरता है। अतः यह माना जा सकता है कि यह काव्य चौदहवीं

१. रामचरितमानस : तुलनात्मक अध्ययन : पृ. १५५

शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही लिखा गया होगा। कुछ लोग इसका रचना काल तेरहवीं शती के मध्यभाग में मानने के पक्षपाती हैं।

रंगनाथ रामायण द्विपद शैली में लिखा गया प्रथम विशाल महाकाव्य १७२९० पंक्तियाँ–है। इससे पूर्व तेलुगु भाषा में लिखे गये दो-तीन रामायणों का उल्लेख तो हुआ है किन्तु वे अनुपलब्ध हैं। अतः यह काव्य तेलुगु का प्रथम तथा अद्वितीय रामकाव्य है।

अवतारिका में बुद्धनाथ ने अपनी रचना के बारे में यों लिखा है :–

'पदमुलर्थंबुलु भावमुलगतुल–पदशय्यलर्थसौभाग्यमुल् यतुलु
रसमुलु गुंभनल् प्राससंगतुलु–नसमानरीतुल नन्नियु गलुग
नादिकवीश्वरुडैन वाल्मीकि–यादरंबुन बुण्युलंदरु मेच्च
जेप्पिन तेरगुन श्रीरामचरित–मोप्प जेप्पेद...।'

(पद, अर्थ, भाव, गति, पदशय्या, अर्थसौभाग्य, यति, रस, प्रास, असमान रीतियाँ-इन सबसे संयुक्तकर,जिस विधान से आदि कवीश्वर वाल्मीकि ने पुण्यपुरुषों की सादरप्रशंसा प्राप्त करते हुए श्रीराम चरित का वर्णन किया था, उसी प्रकार मैं भी श्रीराम चरित की रचना करूँगा।)

यद्यपि बुद्धभूपति ने वाल्मीकि के अनुसार ही रामकथा का वर्णन करने का नियम बना लिया था, वाल्मीकि के प्रश्न करने पर नारद तथा ब्रह्मा के संक्षिप्त रामकथा-कथन तथा क्रौंचवध-प्रसंग से ही कथा का प्रारंभ किया था, तथापि इस काव्य में ऐसे कई रमणीय प्रसंगों की उद्‌भावना की गई है, जिन्हें अवाल्मीकीय कहा जाता है। इन आवाल्मीकीय प्रसंगों पर विस्तार से विचार करने वाले श्री मल्लंपल्लि सोमशेखर शर्माजी का मत है कि जब तक इस विषय का पता न चले कि बुद्धारेड्डी ने वाल्मीकि रामायण की किस प्रति को आधार बनाया था, तब तक इन प्रसंगों को निस्संदेह रूप से अवाल्मीकीय नहीं माना जा सकता। कारण यह कि आज देश में वाल्मीकि रामायण की जितनी प्रतियाँ उपलब्ध हैं, उन सब में थोड़ी-बहुत भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। श्री शर्माजी ने वाल्मीकि रामायण के एक संस्करण का उल्लेख किया है जो इटली के परिगिनगर से सन् १८५० में नगारी लिपि में, तथा पाँच भागों में प्रकाशित है। इस प्रति में रंगताथ रामायण के कुछ अवाल्मीकीय प्रसंगों का वर्णन उपलब्ध है। श्री शर्माजी का विचार है कि जब तक वाल्मीकि रामायण की उपलब्ध सभी प्रतियों का अनुशीलन-परिशीलन कर मूलपाठ का निर्णय

नहीं होता तब तक भारतीय भाषाओं में प्रचलित रामायणों के किसी प्रसंग को अवाल्मीकीय कहना तर्कसंगत नहीं है। डा० वी० रामराजु जैसे लोकसाहित्य के मर्मज्ञ विद्वान का मत है कि आन्ध्रदेश में प्रचलित लोकसाहित्य ही इन तथाकथित अवाल्मीकीय प्रसंगों का मूल उत्स है। क्योंकि ये प्रसंग प्रायः एक ही रूप में तेलुगु के अन्य रामायणों में भी प्राप्त हैं। जो हो, रंगनाथ रामायण के कुछ ऐसे प्रसंग हैं जो अवाल्मीकीय माने जाते हुए भी काव्य रसिकों को भावविभोर करने में समर्थ हैं। इनमें अरण्यकांड का जंबुकुमार वृत्तान्त, युद्धकांड के गिलहरी प्रसंग, कालनेमी तथा सुलोचना वृत्तान्त प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त

बालकांड में इन्द्र का गौतम के आश्रम के पास जाकर, मुर्गा बन बांग देना,

अयोध्याकांड में मंथरा का श्रीराम के अपने प्रति किए अपराध का बदला लेने का निश्चय कर लेना,

युद्धकांड में रावण का भरी सभा में लात मारकर विभीषण को नगर से निकाल देना,

विभीषण का माता के पास जाना,

कैकेशी (रावण की माता) का रावण को राम की महिमा के बारे में समझाना, जल–प्रलय के बारे में बताना,

रावण का राम के धनुर्विद्या-कौशल की प्रशंसा करना,

नाग पाशबद्ध रामलक्ष्मण के पास नारद का आगमन,

श्रीराम के बलपराक्रम के बारे में मंदोदरी का रावण को बताना,

संजीवनी बूटी लाने के लिए जाने वाले हनुमान से माल्यवंत का युद्ध करना,

शुक्राचार्य के समक्ष रावण का अपना दुखडा रोना,

रावण का पाताल होम करना,

अंगद का मंदोदरी को खींचकर यज्ञवेदी के पास लाना जिससे रावण के यज्ञ का भंग हो जाना,

नाभि में स्थित अमृत को सोखकर रावण का वध करने के लिए विभीषण का राम को सलाह देना आदि।

इतना ता निर्विवाद सत्य है कि उपरोक्त प्रसंग मूलकथा की घनाओं को अधिक तर्क-संगत सिद्ध करने वाले तथा काव्य सौंदर्य में चार चाँद लगाने वाले हैं। कुछ प्रसंग कथा की गति को अधिक रोचक और मार्मिक बनाने में समर्थ हैं तो कुछ प्रसंगों के कारण राम कथा के पात्रों के चरित्रचित्रण में मनोवैज्ञानिकता उभर कर आई है और उनके उदात्त तत्व से पाठक प्रभावित हो जाते हैं।

यहाँ केवल दो प्रसंगों को प्रस्तुत किया जाएगा जो काव्य रसिकों के लिए अतीव रुचिकर सिद्ध होंगे।

जिस समय सुग्रीव के आदेश पर वानर समुद्र पर सेतु का निर्माण कर रहे थे, उस समय एक गिलहरी ने यह सोचा कि सेतु का निर्माण अतिशीघ्रता से पूरा हो जाना चाहिए। मैं भी इस कार्य में सहायता करूँगी। ऐसा निश्चयकर वह गिलहरी

...'श्रीरामुनि यड्गुदामरलु–मनमुन जेर्चि या मनुजेशु नेदुर
नच्चपु भक्तितो नल वार्धि मुनिगि–वच्चि ता निसुकलो वांड बोरलाडि
तडयक यट चनि तन मेनि इसुक-वडि गट्टुपै राल्चि बनधिलो मरियु
देलि गट्टुन केगि तिरुगंग बोरलि–वालिन भक्तितो वच्चि विदल्सु।'

(श्रीराम के चरण कमलों को मन में धारण कर, स्वच्छ भक्ति भाव से समुद्र में डुबकी लगा बाहर आकर, रेत में लोटने लगी। (ऐसा लोटने पर शरीर रेत से भर गया।) तब वह अविलव जाकर बाँध पर उस रेत को डालने लगी। इस प्रकार वह बार-बार करने लगी। इससे बारी-बारी से थोड़ी सी रेत ऊँट के मुंह में जीरे के सम–सेतु पर पड़ने लगी।)

गिलहरी के इस कार्य को देख श्रीरामचन्द्र मुग्ध हुए और लक्ष्मण को बुलाकर, वह दृश्य दिखाया। अपनी हस्ती के बारे में ध्यान दिए बिना काम किए जाने वाली उस गिलहरी को देख लक्ष्मण ने कहा :–

'...कमलाप्तवंश्य ! कनुगोंटि भवदंघ्रि कमलमुल् भक्ति
नेव्वडु मदि निल्पि येसग दृणंबु–नव्वेल्पुगिरि बोलुमनिन गाकुन्ने,
कावुन भक्तिये कारणंबनघ!'

(हे सूर्यवंशी राम! मन में आपके चरण कमलों में भक्ति रखकर, कोई तृण भी समर्पित करे, तो वह हिमगिरि के समान होगा। अतः गिलहरी

के सेवा भाव का मूल कारण भक्ति ही है।)

तब रामचन्द्र ने उसे अपने पास मँगवाया, उसे हाथ में ले सराहा और उसकी पीठ पर अपनी उंगलियाँ फेरीं। गिलहरी की पीठ पर उन तीन उंगलियों की रेखाएँ पड़ गई और आज भी हम उन तीन रेखाओं को देख सकते हैं।

इसी प्रसंग के आधार पर तेलूगु में एक कहावत ही चल पड़ी है 'उड्ता-भक्ति' (गिलहरी की भक्ति)। जब कभी कोई व्यक्ति अपनी हस्ती अथवा हैसियत पर ध्यान न देकर, बृहद् कार्य में योग देता है अथवा किसी महान् पुरुष की थोडी बहुत सेवा करता है तब इस कहावत का प्रयोग किया जाता है।

सुलोचना वृत्तान्त रंगनाथ रामायाण के मार्मिक प्रसंगों में अत्यन्त करुण रस पूर्ण है। सुलोचना [1] रावण की पतोहू और मेघनाथ की पत्नी है। उसकी पति भक्ति तथा रामभक्ति दोनों अप्रतिमान हैं।

रंगनाथ रामायण के अनुसार यह प्रसंग इस प्रकार है:

रणक्षेत्र में इन्द्रजित के मर जाने का समाचार पाकर वह देर तक विलाप करती रही। पतिव्रता स्त्री के लिए सहगमन ही उत्तम धर्म है, यह निश्चय कर वह रावण के पास गई और युद्धभूमि से अपने पति का शव मँगवाने की प्रार्थना की। रावण ने जब अपनी असमर्थता व्यक्त की तब वह स्वयं युद्धभूमि की ओर चल पड़ी। आकाशवीथि से आने वाली उसे देख वानर वीर आश्चर्य चकित हो गए। सुलोचना ने श्री राम को प्रणाम कर, प्रस्तुति कर विनती की कि तुम दयासागर हो। मैं विधवा होकर जीवित नहीं रह सकती। पतिभिक्षा देकर मेरी रक्षा करो। भक्तवत्सल भगवान का हृदय वात्सल्यवश द्रवीभूत हो ही रहा था कि मारुतिनन्दन ने ब्रह्मा की लिपि की अनिवार्यता का स्मरण दिलाया तो भगवान ने उसे वर प्रदान किया कि अगले जन्म में तुम लोग अनेक वर्षों तक सुख भोग कर अन्त में वैकुंठ प्राप्त करोगे। तब सुलोचना ने पति के कलेबर को दिलाने की याचना की। सुग्रीव ने उसकी पति भक्ति की अवहेलना करते हुए कहा कि यदि तुम सच्ची पतिव्रता हो तो अपने पति से वार्तालाप करो। सुलोचना ने अपने पति के सिर को पहचान कर विलाप किया और कहा कि

---

१. मैकेल मधूसूदनदत्त ने इन्हें 'प्रमीला' नाम दिया था।

....వలనొప్పు నా మనోవాక్కాయకర्म

मुलयंदु बतिभक्ति मोनसितिनेनि - सललित धर्मसंचारंबुनंदु
पतिये दैवंबनि भावंबुलोन - सततंबु व्रतमुगा सलुपुदुनेनि
चेलगि ना विभुनकु जीवंबु वच्चि - यलर नातो माटलाडुगाक'

(यदि मन, वाक्, कर्म से (त्रिकरण से) पतिभक्ति युक्त हूँ, धर्माचरण में पति को ही भगवान मानकर, सतत नियत व्रत से रहूँगी तो मेरा पति जीवित होकर मेरे साथ बात करेंगे ।)

सुलोचना के ऐसा कहते ही इन्द्रजित ने आँखें खोलकर दुर्निवार काल के बारे में बताया और अपनी पत्नी को आश्वस्त कर आँखे मूंद ली। तब रामचन्द्रजी की आज्ञा पाकर अपने पति के शव को कंधे पर रख, सुलोचना अपनी नगरी में आई । अपने पुत्रों को ननिहाल जाकर रहने का आदेश देकर, वह अपने ससुर रावण के पास गई और रामचन्द्र के दयारस, लक्ष्मण के प्रेमातिशय, विभीषण के प्रेम और कपिकुंजरों के पराक्रम के बारे में बताया और सहगमन करने की अनुमति मांगी ।

कभी आश्चर्य चकित न होने वाला रावण भी
'आ यिंति तेगुवकु ना यिंति तेलिवि–का यिंति समबुद्धि का महामहिम
का यिंति पतिभक्ति का यिंति वेग–गायमु देच्चिन क्रमशक्तियुक्ति'

(उस स्त्री के साहस, बुद्धि, समबुद्धि, महिमा, पतिभक्ति तथा पति के शरीर को लाने में शक्ति-युक्ति को देखकर)

आश्चर्य चकित हो, किंकर्त्तव्य-विमूढ सा हो गया ।
तब भव्यविधि से सुलोचना ने पति के साथ सहगमन किया ।

इस प्रकार सुलोचना वृत्तान्त राक्षस कुलाँगनाओं के चरित्र-गौरव को प्रस्तुत करनेवाला है ।

गोन बुद्धारेड्डी की अवाल्मीकीय कल्पनाओं ने रामकथा के पात्रों के चरित्र चित्रण को अधिक युक्ति संगत तथा मनोवैज्ञानिक बनाया है ।

बालकांड में गौतम के आश्रम के पास जाकर, इन्द्र का कुक्कुट रूप धारण कर बांग देने पर गौतम प्रातःकालीन नित्यकृत्य करने के लिए नदी की ओर चले जाते हैं । यह गौतम और अहल्या को अलग करने का सुन्दर उपाय है । अहल्या का शाप के कारण पत्थर बन जाने की बात भी मूल में नहीं है ।

बचपन में खेलकूद में बाधा डालने वाली मंथरा को राम पीटते हैं तो उसकी टाँग टूट जाती है । तब से वह प्रतिशोध लेने के लिए समुचित अवसर

की टोह में थी। ठीक समय पर कैकेयी के कान भरकर, राम को वन भेजकर वह बदला लेती है।

अरण्यकांड में जंबुमाली वृत्तान्त भी रोचक है। जंबुमाली शूर्पणखा का पुत्र है। वह अपने पिता का वध करने वाले रावण से बदला लेने के लिए सूर्य के प्रति तपस्या करता रहता है। शूर्पणखा उसके लिए रोज भोजन ले जाया करती है। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर सूर्य एक खड्ग उसके पास भेजते हैं। इसे अपना अपमान समझकर, जंबुमाली उस खड्ग को नहीं स्वीकारता तो वह खड्ग वहीं आकाश में तैरता रहता है। उधर कंदमूल फल के लिए आया हुआ लक्ष्मण उसे देखता है। खड्ग को हाथ में लेकर उसकी धार की परीक्षा लेने के लिए, वहीं के एक झाड़ी पर उसे चलाता है। उस झाड़ी में वैठा जंबुमाली कट मरता है। लक्ष्मण को अपने किए पर पश्चात्ताप होता है तो ऋषिलोग समझाते हैं कि तुमने जो किया वह अच्छा ही किया है। लक्ष्मण अपनी कुटिया की ओर चल देता हैं। इतने में शूर्पणखा भोजन लिए आती है और पुत्र-वध को देखकर आग-बबूला हो जाती है और अपने पुत्र-हंतक का वध करने के लिए निकल पड़ती है। राम और लक्ष्मण के सौंदर्य को देखकर उसका सारा क्रोध काम में परिवर्तित होता है। कवि ने शूर्पणखा के राक्षसी–काम का प्रभावशाली चित्रण किया है।

इसी प्रकार अन्य प्रसंगों की उद्भावना भी पात्रों के चरित्र में निखार लाने वाला है। कैकेशी और मंदोदरी के चरित्र को भी उदात्तभाव-समन्वित रूप में चित्रित किया है।

रावण वध के पश्चात् अयोध्या लौटते समय राम का रामेश्वरम में शिवलिंग की प्रतिष्ठा करना हरिहर तथा शिव केशव अद्वैत की स्थापना करने वाला एवं समन्वय-साधक है।

रंगनाथ रामायण तेलुगु के देशी छन्द 'द्विपद' में लिखा गया है। द्विपद दोहे के समान पाठ्य और गेय है। यह मात्रिक छन्द है। पढने के लिए सरल तथा गाने में मधुर होता है। यही कारण है कि तेलुगु के रामकथा संबंधी लोक नाटकों में और चर्मपुत्तलिकाओं की प्रदर्शिनियों में इसी रामायण से काम लिया जाता है।

बुद्धारेड्डी को अपने पांडित्य तथा कविता शक्ति पर आत्म-विश्वास एवं गर्व है जो निम्न पंक्तियों में स्पष्ट है। विट्ठल भूपति के प्रश्न करने पर कि तेलुगु में रामकथा का वर्णन कर सकने वाले शक्ति-प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति कौन हैं। सभासद यों कहते हैं :–

नी तनूजन्मुंडु निपुणमानसुडु–धूतकल्मषुडु, बंधुरनीतियुतुडु
सर्वज्ञु, डनघुंडु, चतुरवर्तनुडु सर्वपुराण विचार तत्परुडु
कमनीय बहुकलागमविचक्षणुडु–सुमनीषि पोषणोत्सुकसुखोन्नतुडु
कवि सार्व भौमुंडु, कविकल्पतरुवु–कविलोकभोजुंडु, कविपुरंदरुडु
....
··· निखिलशब्दार्थ–पाकज्ञुडत्यंत पांडित्यधनुडु
मरियु रामायणमर्म मातंड–येरुगु ····

(तुम्हारा पुत्र निपुण मन, पावन चरित्र, बंधुरनीति वाला है। सर्वज्ञ, अनघ, चतुर-व्यवहार युक्त, सर्वपुराणों के विचार में तत्पर, अनेक कमनीय कलाशास्त्रों में विचक्षण, सुमनीषियों के पोषण करने में अधिक सुख का अनुभव करने वाला है। कवि सार्वभौम, कविकुल-कल्पतरु, कविलोक-भोज, कवींद्र है। ····(तथा) निखिल शब्दार्थों के मर्मज्ञ, पांडित्य-धनी हैं। वे ही रामायण के मर्म को जानते हैं।)

रंगनाथ रामायण के कलागत सौंदर्य के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कवि ने अपने बारे में जिन विशेषणों का प्रयोग किया है, उनमें किसी प्रकार की अतिशयोक्ति नहीं हैं। 'असमान ललित शब्दार्थ संगतियों' तथा 'अलंकार भावनाओं' से युक्त इस काव्य में कहीं मनोहर वर्णनों की शोभा है तो कहीं प्रकृति वर्णन की छटा है जो पाठक को मुग्ध कर देती है। उक्ति वैचित्र्य एवं अर्थ गौरव से युक्त इस काव्य में संस्कृत बहुल समास युक्त मधुर-गभीर भाषा के साथ ठेठ तेलुगु भाषा के मुहावरे का हृदयंगम प्रयोग हुआ है जो कवि के उभय भाषा पांडित्य का ज्वलंत प्रमाण प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार काव्य रचना विधान, इतिवृत का विकास, चरित्र चित्रण की मनोवैज्ञानिकता तथा वर्णन, शैली एवं कला चातुर्य से युक्त होकर, रंगनाथ रामायण काव्य रसिकों को आनन्दविभोर कर देता है। तेलुगु भाषा के राम काव्यों में भाव प्रौढता तथा काव्य माधुरी के कारण इस काव्य का अद्वितीय स्थान है।

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावत् रामायण कथा लोकेषु प्रचरिष्यति ।।

—:०:—

रामायण कल्पवृक्षमु : एक विश्लेषण

बी० सायिलु

रामायण भारतीय जन जीवन का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इसमें भारत की अखण्डता एवं भावात्मक एकता के दर्शन होते है। भारतीय जन जीवन में राम नाम के साथ-साथ रामायण का विशिष्ट स्थान हैं।

आदिकवि वाल्मीकि द्वारा संस्कृत भाषा में विरचित श्रीमद्रामायण के कई अनुवाद भारत की प्रधान भाषाओं में मिलते हैं। दक्षिण की प्रमुख भाषा तेलुगु में भी इसके कई अनुवाद प्राप्त हैं। कथा के आधार पर स्वतंत्र रूप से लिखे गये कुछ काव्य ग्रन्थ भी तेलुगु साहित्य में उपलब्ध हैं। इस प्रकार के तेलुगु राम काव्यों में कलाप्रपूर्ण, कविसम्राट् विश्वनाथ सत्यनारायण जी कृत 'श्रीमद्रामायणकल्पवृक्षम्' अग्रगण्य माना जाता है। भारतीय साहित्य में इस महाकाव्य का विशिष्ट स्थान हैं। भारतीय ज्ञानपीठ के सम्मान्य पुरस्कार ने इस बात को प्रमाणित किया है कि रामायणकल्पवृक्ष आधुनिक युग का अद्वितीय क्लासिक है।

काव्य के आरंभ में श्री सत्यनारायण जी ने "तेलुगु में कई रामायणों के होते हुए भी यह रामायण क्यों" इस प्रश्न का समाधान यों किया है :–

मरल निदेल रामायणं बन्नचो
नी प्रपंचक मेल्ल नेल्ल वेळ
दिनुचुन्न यन्नमे दिनुचुन्नदिन्नाळु
तनरुचि ब्रतुकुलु तनविगान
चेसिन संसारमे सेयुचुन्नदि
तनदैन यनुभूति तनदिगान
तलचिन रामुने तलचेद नेनुनु
ना भक्ति रचनलु नाविगान। (अवतारिका. पृ० ४)

(अर्थात् इससे पहले कई रामायणों की रचना हुई है। इस पर प्रश्न उठेगा फिर यह क्यों? उसका समाधान यह है कि संसार के लोग बार-बार

उसी अन्न को खा रहे हैं क्योंकि उनकी अपनी रुचि अलग है और जीने का विधान अलग हैं। अपनी-अपनी अनुभूति के कारण बार-बार उसी गृहस्थी को निभा रहे हैं। इसलिए मेरी भक्ति और रचना विधान के मेरे अपने होने के कारण मैं पुनः उसी राम का स्मरण करूँगा, जिसका दूसरे लोगों ने भी स्मरण किया था।)

"तलचिन रामुने तलचेद नेनुनु ना भक्ति रचनलु नाविगान"

"स्मरण करूँ तो उसी राम का स्मरण करूँगा क्योंकि मेरी भक्ति और मेरी रचना मेरी अपनी हैं"। यही कल्पवृक्ष की वैयक्तिकता को प्रमाणित करता है यद्यपि प्राचेतसमुनि से लेकर आज तक कई लोगों ने रामायण की रचना की है तथापि रामायणकल्पवृक्ष अन्य रामायणों से भिन्न और विशिष्ट है। उसकी प्रत्येक पंक्ति और शब्द पर कविसम्राट् की अमिट छाप है। इसलिए वह 'विश्वनाथ रामायण' के नाम से प्रख्यात होगया है।

विश्वनाथ जी को भारतीय संस्कृति पर अटूट आस्था है। इसलिए उन्होंने भारतीय संस्कृति की सुरक्षा के लिए इस पीढी और आनेवाली पीढियों के सम्मुख श्रीमद्रामायण कल्पवृक्ष में भारतीय संस्कृति का उज्ज्वलतम चित्र प्रस्तुत किया है।

विश्वनाथ सत्यनारायण जी ने रामायणकल्पवृक्ष की रचना का उद्देश्य इस प्रकार अभिव्यक्त किया है–

व्रासिन रामचन्द्रुकथ व्रासितिवंचनिर्पिचुको वृथा
यासमुगाक कट्टुकथ लैहिकमा ? परमा ? यटंचु दा
जेसिन तंड्रियाज्ञयुनु जीवुनि वेदन रेंडु नेकमै
ना सकलोह वैभव सनाथमु नाथ कथन् रचिंचेदन्।

(अर्थात् कल्पित कहानियों को क्यों व्यर्थ लिखता है, उनसे न लौकिक सुख मिलता है न पारलौकिक। यदि "लिखना ही है तो रामचन्द्र की कहानी लिखो" पिता की इस आज्ञा और मेरी आत्मा की वेदना इन दोनों के योग से संसार के नाथ श्रीरामचन्द्र की कहानी को समस्तकल्पनाओं के वैभव से युक्त कर लिखूंगा।)

अर्थात् पिता की आज्ञा और जीव की वेदना के हेतु उन्होंने इस काव्य की रचना की है।

इस काव्य की प्रशंसा डा० ऐ० पांडुरंगराव जी के शब्दों में यों कर सकते हैं-'नन्नयार्य की आर्षकल्पना, कालिदास, भवभूति, भास आदि की भाव-रस-सृष्टिसाधना, पोतना की मकरंद माधुरी, रामकृष्ण की पदगरिमा, श्रीनाथ की कविता चातुरी को लेकर कमनीय कल्पवृक्ष रसायन की रचना की गई है।"

अर्थात् तेलुगु तया संस्कृत के समस्त महाकवियों के रचना-वैशिष्ठ्य का पुंजीभूत रूप ही कल्पवृक्ष है।

स्वयं श्री सत्यनारायणजी ने कहा है कि-"नींव वाल्मीकि की है। उस पर सुन्दर भवन विश्वनाथ का है। इसमें मेरी दृष्टि हैं, मेरी अनुभूति है, मेरा परिशीलन है, अतः यह रामायण मेरा है।"

'रामायण कल्पवृक्ष' एक स्वतंत्र रचना है जो विश्वनाथ सत्यनारायण की कल्पना शक्ति से अनुप्राणित है। महाभारत के आन्ध्रानुवाद में नन्नय भट्ट ने जिस आदर्श को प्रतिष्ठित किया था, लगभग वही आदर्श विश्वनाथ ने अपने रामायण कल्पवृक्ष में अपनाया है। अर्थात् रामायण कल्पतरु वाल्मीकि रामायण का यथावत् अनुवाद नहीं है-कथा सूत्र तो वही है किन्तु जगह-जगह इसमें कवि की विनूतन कल्पनाएँ हैं। प्रत्येक कांड को पांच भागों में विभाजित किया गया है और हर भाग के लिए वस्तुसूचक नाम भी दिया गया है।

रामायण कल्पवृक्ष की रचना सन् १९३३ में आरंभ हुई और लगभग तीस साल के पश्चात् १९६१ में समाप्त हुई। काव्य के कलात्मक सौष्ठव के साथ-साथ परिमाण में भी यह रचना आदि कवि वाल्मीकि की चतुर्विंशति सहस्रिका' (चौबीस हजार श्लोकों में निबद्ध रामायण) के समतुल्य माना जा सकती है। 'रामायण कल्पवृक्ष' लगभग पचास हजार पंक्तियों में निबद्ध और कवि की सुप्रसन्न मधुर रसज्ञता को व्यंजित करने वाली विशालकाय रचना है। कल्पवृक्ष के रचना काल को विश्वनाथ के साहित्यिक जीवन में महत्वपूर्ण युग माना जाता है। वास्तव में यह कवि के विकास का युग था। कल्पवृक्ष की रचना करके विश्वनाथ ने अपने जीवन को धन्य बनाया। रामायण कल्पतरु अपनी विशेषताओं के कारण तेलुगु साहित्य-सरस्वती का मुकुट मणि बन शोभित हो रहा है।

कवि सम्राट् विश्वनाथ सत्यनारायणजी ने इस रामायण का नाम 'कल्पवृक्ष' रखा है। जिस प्रकार कल्पवृक्ष सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाला दिव्य वृक्ष है उसी प्रकार रामायण कल्पवृक्ष में सहृदय पाठक भक्ति, ज्ञान, बुद्धि, सदाचार, संस्कृति आदि सबको निस्सदेह प्राप्त कर सकता है। रसास्वादन करने वाले रसिकों के लिए यह कविता सौंदर्य, रसानुभूति आदि को प्रदान करने वाला महाकाव्य है। वास्तव में यह आंध्र साहित्य का ही नहीं बल्कि भारतीय साहित्य का कल्पवृक्ष है।

तेलुगु के सुप्रसिद्ध आलोचक डा. दिवाकर्ल वेंकटावधानी ने कल्पवृक्ष को शिल्पवृक्ष माना है। जो पूर्णतया यथार्थ है। कवि के रचना कौशल को काव्य का शिल्प कहते हैं। वह अनेक प्रकार का होता है। रस, अलंकार, भाव, पात्र, कथा, रीति आदि में कवि अपने काव्य शिल्प को प्रदर्शित करता है।

काव्य की कथा में कथा के कथन, उपाख्यान नामक दो प्रधान भेद होते हैं। इन दोनों में प्रसंग, पात्र इत्यादि के आधार पर भेद का स्पष्टीकरण होता है। उपाख्यान सब एक प्रकार से नहीं होते। अलग-अलग उपाख्यानों का प्रयोजन अलग-अलग होता है। सामान्यत: उपाख्यान कथा के प्रधान पात्रों द्वारा कहलाये जाते हैं। इसलिए पात्रों की प्रधानता, अप्रधानता, स्वभाव इत्यादि कथा प्रसंग और प्रयोजन के अनुसार कथा शिल्प में भेद किये जाते हैं। इन सभी को दृष्टि में रखकर ही कथा के कथन के शिल्प के चमत्कार को जानकर आनन्दित होने का अवसर पाठक को मिलता है।

डा. अवधानी जी के अनुसार "कथा काव्य का शरीर है। कथा के कथन के विधान में कई भेद हैं। सभी कहानियों को एक प्रकार नहीं कहा जा सकता। पात्र, रस, भावादि के अनुसार कथा के कथन पद्धति में विभिन्नता होनी चाहिए। तेलुगु साहित्य में इस प्रकार कहानी को लिखने का ढंग नन्नया जानते थे। कवि सम्राट् विश्वनाथ सत्यनारायणजी की कथा की कथन शैली विशिष्ट होती है। इसमें उनके व्यक्तित्व की छाप लगी रहती है।"

विश्वनाथ के कथा के कथन में पात्रों के मनोलक्षणों का चित्रीकरण विशिष्ट रूप का होता है। इससे यह विदित होता है कि वे मनोविज्ञान के अच्छे पंडित भी हैं। एक ओर पात्रों से हेतुपूर्ण विचार व्यक्त करवाते हुए दूसरी ओर स्वयं स्वतंत्र रूप से व्याख्या करते हैं। इसलिए कल्पवृक्ष के पाठक को रचनागत शिल्प भावना तथा हेतुपूर्ण कल्पना के साथ अपनी बुद्धि को दौडाना पडता है।

प्रस्तुत लेख में श्रीमद्रामायण कल्पवृक्ष के कथा शिल्प के कुछ महत्वपूर्ण प्रसंगों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

रामायण कल्पवृक्ष में मेनका-विश्वामित्र की प्रणय कथा का वृत्तांत अत्यंत रमणीय रूप में वर्णित है।

महर्षि विश्वामित्र ने कृष्णाजिन, कमंडल, कुश, हवन आदि को छोडकर मेनका के साथ पर्ण कुटी में रहते हुए श्रृंगार रसास्वादन किया था। उस घटना का वर्णन विश्वनाथजी ने बडे चमत्कार पूर्ण ढंग से किया है—

वेदुरु गोट्टाल निंपिन यिप्पपुवु कल्लु
तेच्चि यच्चरकु नंदिच्चु वेळ
नरुण वर्णाभिरामानेक वृक्षानि–
र्यासमुल् पाराणि राचु वेळ
घनसार चंदनकर्पूर तरुखंड
मुलु धूपमुलु वेसि वेलुचु वेळ
नुदुरु वासनलतो बोदल बूचिन वन्य
पुष्पमुल् कोप्पुलो मुडुचु वेळ
दाने यिच्चि यिच्चि तानुगा राचुच
दाने वेलिचि वेलचि ताने मुडिचि
येदुट निलिचि ठीवि येल्लयु नोडलि यं
चुलनु देर नव्वि चूचुचुंड।

(बा. धनुष. पृ. २६५)

अर्थात्–महुए के फलों का रस लाकर अप्सरा (मेनका) को पिलाते समय, अनेक वृक्षों के लाल सुन्दर फूलों के पराग को चरणों में हल्दी के रूप में लगाते समय, चन्दन, कर्पूर आदि तरु-खंडों के धूप (सुगंध) सुंघाते समय झाड़ी में लगेहुए सुगंधित फूलों को वेणी में विभूषित करते समय, उसके (मेनका) शरीर के छोरों की सुन्दरता को देखकर मुनि प्रसन्न मुग्ध बन जाते थे।)

कोकिल कोम्मलो गूसिन नीवटे
नन्नु बिलिचिति वंचु नव्वु मौनि
तुम्मेद पोदलोन झुम्मन निदियेमि
मणितमे यनि मेल माड्डु मौनि
वन शिखावळमु विप्पिन पिंछमुनु दडि

तुड्तुने यनि कोप्पु विड्चु मौनि
यिर्रि मुंगिट निल्व लेमि चूपुले यंचु
नतिव कन्नुल मुद्दुलाडु मौनि
याकु गदल भय मटंचुनु दनवुनु
नुविद कवुगिलित नोदुगु मौनि
मौनि मौनि कादु ममतचे वाचाल
सार्वभौमुडय्ये सौर्य रत्न ।

(बाल० धनुष० पृ. २६६)

(अर्थात् डाली पर कोयल की कूक सुनकर मुनि हँसते हुए कहते हैं कि क्या तुमने मुझे बुलाया है ? झाड़ी में भ्रमरों की गुंजार सुनकर मुनि मजाक करते हैं कि यह कौनसा मणित है । वन मयूर की पूंछ के समान वेणी को पोंछने के बहाने लटों को बिखेर देते हैं । हिरण के सामने आ खडे होने पर मेनका की आँखों की प्रशंसा करते हुए चूम लेते हैं । पत्तों के हिलने पर भय का बहाना करके मेनका को गले से लगा लेते हैं । इस प्रकार प्रेम भाव के कारण वे "मौनि" न रहकर वाचाल सार्वभौम बन गये ।)

तन पाद मामेपादमु जतगा बेट्टि
यस्मत्पदंबु मोटनि वंचिचु
तन हस्तमामे हस्तमु मीद बोंलिचि
नीचेयि लेदनि निह्नविंचु
नामे पक्कग निल्चि यगुना भुजमुदाक
वच्चितिवे यनि पलुवरिंचु
चेकिकलि जेक्किलि जेंचि गड्डमु ग्रुच्चु
कोन्नदा यनि ग्रुच्चि यड्गु
नानुकोनि कूरुचुंडि नी यच्चमैन
रत्नकान्ति तनु प्रभाराशि क्रम्मि
ना तनूकांतिगूड रत्नमुल प्रभलु
चिम्मुननि चिल्करिंचुनु जिकिलिनव्वु ।

(बाल० धनुष० पृ० २६६)

(मुनि अपने चरण को मेनका के चरण के बराबर रखकर कहते हैं कि मेरा चरण भद्दा है। अपने हाथ को उसके हाथ के ऊपर रखकर मज़ाक करते हैं कि तुम्हारा हाथ गायब होगया है। मेनका के पास खड़े होकर कहते हैं कि क्या तुम मेरे कद की हो गयी हो? अपने गाल उसके गाल से लगाकर पूछते हैं कि क्या तुम्हे मेरी दाढ़ी के बाल चुभ रहे हैं। मुनि मेनका के शरीर से लगकर बैठते हैं और हँसते हुए कहते हैं कि सच्चे रत्न रूपी तुम्हारे शरीर की कांति से मेरे शरीर की कांति भी रत्नों के समान प्रकाश को प्रकट करती है।)

मुनि के आश्रम में उनके भय के कारण छः ऋतुएँ सदा वसंत का ही अभिनय करती हैं। उस घटना का वर्णन कविसम्राट् विश्वनाथ सत्यनारायण ने इस प्रकार किया है —

आरु ऋतुवुलु मौनि भयंबु वलन
बूलतो लेतयेंड जालु तोड
जिवुरु तो लेत वेन्नेल सुवुरु तोड
नाश्रममुन वसंतम्मे यभिनयिंचु।

(बाल० धनुष० पृ० २६७)

(मुनि के भय के मारे षट् ऋतुएँ, फूल, बालातप, पल्लव, चाँदनी की शोभा से युक्त होकर उस आश्रम में वसंत का रूप धारण किए रहीं।)

इस प्रकार प्रणय के दस साल बीत गये। तब विश्वामित्र को अपनी तपः साधना की बात याद आई और वे अपनी विमूढता पर लज्जित हुए, लम्बी साँस खींचते हुए पश्चाताप किया। देवताओं ने ही इस काम पर मेनका को भेजा यह जानकर मुनि कहते हैं —

पनियेमो देवतलदि
वनिता ! कूलिकिनि वच्चिनयट्टुल-
य्युनु वेडद लोतु लिच्चिन
निनु नेला शापिंच वलयुने मधुमूर्ति।

(बाल० धनुष० पृ. २६८)

(हे मधुमूर्ति ! तुम जिस काम के लिए आयी थी वह तो देवताओं का था । दूसरों के काम के लिए या मजदूरी के लिए आकर भी तुमने हृदय की गहराइयों का परिचय दिया । तुम्हें किस मुँह से शाप दूँ ।)

कोरि प्रत्यक्ष मन्मथ गुरुववैति
कोरक परोक्ष वैराग्य गुरुववैति
लंजिया ? येंत क्रिदिकि गुंजिनावो
यंत पैकिनि जनु मार्ग मरसिनावु

(बाल० धनुष· पृ. २६९)

(चाहकर साक्षात् मन्मथ विद्या (काम सुख) प्रदान करने वाली गुरु बनकर और परोक्ष रूप से तुम मेरे लिए वैराग्य भाव के लिए भी गुरु बन गई हो । तुमने जितना मुझे पतित किया था उतना ही उन्नति का मार्ग दिखाया है ।)

कैकेयी-राम-संवाद श्रीमद्रामायणकल्पतरु में महत्व पूर्ण माना जाता है । राजतिलक के पूर्व रात्रि में श्रीरामचन्द्र विमाता कैकेयी के सदन आये थे। उस घटना का वर्णन विश्वनाथ जी ने निम्न प्रकार से किया है—

आयपरात्रमुन् रघुवरान्वयदीपमु मेल्ल लेचि कै-
केयि गृहंबुलन् जनिये गेकय राजतनूज मोद रे-
खायति श्वोभविष्यदधिक प्रिय पुत्र नवाभिषेक वा-
र्तायुत भावनानुगतयै तनमेडकु मुंदे योप्पगा ।

(अयोध्या० अभिषेक पृ. १४)

(अपने प्रिय पुत्र के राजतिलक के समाचार से प्रसन्न होकर अपने अंतःपुर में खड़ी कैकेयी के पास रामचन्द्र जी रात के समय पहुँचे और उन्हें पुकारा ।

चेलुवुग यौवराज्यमभिषेक मदेमिटि रेपु प्रोद्दुनन
वेलुवडि नीवु सद्व्रतमु वीटनुबुच्चि यिदेमि राक ? लो-
कुलु ननु नाडिपोंसेदरु कुर्रनि सद्व्रत भंगकारिणि
बले मरियेमि मुंचुकोनि वच्चिन दी नडिरात्रि वेळलो ।

(रामचन्द्र की पुकार सुनकर व्रतभंग के कारण कैकेयी व्याकुल हो गई और उनसे कहा–अपने व्रत में विघ्न डालकर यहाँ आने की क्या आवश्यकता थी। लोग मेरी निन्दा करेंगे कि मैंने ही व्रत में भंग डाला है।)

अनिन रामुंडु तल्लि ! समाधि निलुव
दाये नेनेमि चेयुदुनम्म यनुचु
रेपु मोदलुग बद्धवारी गजेन्द्र
मट्लु कदलग वीलुलेदनुकोनेदनु।

(अयोध्या० अभिषेक. पृ. १४)

(तब रामचन्द्र जी कहते हैं कि ध्यान में मेरा मन नहीं लग रहा है। ऐसा लगता है कि कलसे तो बन्धे हुए मत्तगज के समान हिलना भी मुशकिल हो जाएगा।)

अम्म ! समाधि लो निटलमंदुन वेल्पुलु वच्चि नन्नुरा-
ज्यम्मुनु जेयवद्दनि नयटलयि तोचिन नेमितोच के-
निम्मेयि वच्चितिन् निजमदेमियो नाकुन् गूड नट्ले रा-
ज्यम्मुन यंदु गोर्कि यनुनट्टिदि गुंडियबट्टि लेदुनुन्।)

(हे माता ! ध्यानावस्थिति में मुझे लगा कि देवताओं ने मुझे राज्य करने से मना कर दिया है। तब मुझे कुछ सूझा नहीं और मैं तुम्हारे पास चला आया। सच बात तो यह है कि मेरे अन्तर में भी राज्य करने की इच्छा नहीं है।)

अनिगन् गैकयि यिप्पुडटलेयगु, रेपंकस्थयौ जानकिं
गनि सिंहासनसीम वेरोकगतिन् गन्पिंचु बोम्मन्न रा-
मुनि नेत्रंबुल नोवकतीव्र कळयै मुन्नीवु नुव्वेत्तु ने-
र्पिन कोंदछ कळाविचित्र गमन श्री येमगुं जेप्पवे।

(तब कैकेयी ने कहा कि अब तो ऐसा ही लगता है लेकिन कल सीता को लेकर सिंहासन पर बैठने के बाद सब कुछ बदल जायगा। तब श्रीरामचन्द्र जी ने तीव्र दृष्टि से उनकी ओर देखा और पूछा कि तुमने मन लगाकर जो धनुर्विद्या सिखायी थी उसका क्या होगा ?)

और राम ने कहा—

> कनुलन नम्मुलन् बोमिडिकंबुन बोम्मलु चेक्किकोंदुना ?
> ननु नुतिसेय वच्चिन जनंबुल व्यूहमुलन् बगुल्तुना ?
> यनिननु केकयात्मसुत यन्नमु पोंदिन यट्लु चूचि नी
> धनुवुन नुन्न चिक्कन सुतारमु लेंदुनको वंचिपुनान् ?

(तीर की नोक से क्या मैं शिल्प बनाऊँ या मेरी स्तुति करने के लिए आने वाली जनता पर तीर चलाऊँ ? इन बातों को सुनकर कैकेयी को आश्चर्य हुआ ।)

> नेनु राज्यम्मु सेयुट निक्कुवमुग
> लेदु वेल्पुल किष्टम्मु लेदनंग
> रामचन्द्रुनि तीक्षण नेत्रमुल चूचि
> तानु गैकेयि सौधमुलोनि केगे ।

(अयोध्या० अभिषेक० पृ० १५)

(तब रामचन्द्र ने फिर से कहा–सचमुच मेरा राज्य करना देवताओं को पसन्द नहीं है । तब कैकेयी ने तीव्र दृष्टि से रामचन्द्र की ओर देखा और चुपचाप भीतर चली गई)

तदनन्तर कैकेयी अपने वर माँगने की बात और सत्यपालन में दशरथ की असमर्थता को बताती है तो राजा को सत्यप्रतिज्ञ और अपने आपको दृढ प्रतिज्ञ सिद्ध करने के लिए राम वन जाने के लिए निस्संकोच उद्यत होते हैं ।

श्रीमद्रामायण कल्पवृक्ष में वर्णित शिव धनुर्भंग का रचना शिल्प, भाषा सौष्ठव की दृष्टि से अद्वितीय है । शिव धनुर्भंग के समय जो ध्वनि उत्पन्न हुई थी उसका वर्णन सत्यनारायण जी ने निम्न प्रकार किया है—

> निष्ठा वर्ष दमोघ मेघपटली निर्गच्छ दुद्योतित
> स्पेष्ठे रम्मदमालिका युग पदुज्जृंभन्महाघोरवं–
> हिष्ठ स्फूर्ज धुपंड घुर्घुर रवहीन क्रिया प्रौढि द्रा–
> घिष्ठंबै योकराव मंतट नेसंगेन् छिन्न चापंबुनन् ।

(बाल० धनुष० पृ० २८६)

(उस टूटे धनुष से एक भयंकर ध्वनि निकली। अनुपम मेघ समूह में से निकलने वाली चंचलाओं के समूह के कारण प्रकट होने वाली मेघ गर्जनाओं को भी मात करने वाली थी, वह ध्वनि।)

स्फीताष्टा पद विद्युदुज्जवल पयः पीयूष धाराधुनी
नीता स्वाद्यतर प्रगल्भ वचन स्निग्धाननां भोज सं–
था तीर्थंकर मागधोल्वणमु नानामेदिनी राट्सभा
गीति स्वादु मनोज्ञमै धनवु म्रोगेन् राजलोकंबुलन्।

(बाल० धनुष० पृ० २८६)

(विभिन्न देशों की राज सभाओं में शिवधनुर्भंग की ध्वनि रुचिकर गीत के रूप में और समस्त राज लोकों में मनोज्ञ ध्वनि के रूप में प्रतिध्वनित हुई।)

शिव धनुर्भंग के वर्णन में धनुष के टूटने पर उस ध्वनि का जो प्रभाव पड़ा है उस घटना का वर्णन विश्वनाथ जी ने पाँच पद्यों में किया हैं। इन पाँचों पद्यों की रचना कवि ने शार्दूल विक्रीडित छन्द में की है। यहाँ पर गति के अनुरूप छन्दों की रचना हुई है। जिस प्रकार शार्दूल के गर्जन से लोग भयभीत होते हैं। उसी प्रकार शिवधनुर्भंग की ध्वनि को सुनकर सम्पूर्ण राज-लोक भयभीत हो गया। यह ध्वनि विभिन्न लोकों में विभिन्न प्रकार से सुनाई दी। इस घटना के वर्णन में लम्बे–लम्बे समास, द्विरुक्त वर्णों के प्रयोग से उस भयंकर ध्वनि को मानस में प्रत्यक्ष कराने का कवि ने प्रयत्न किया है।

गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या पति के शाप के कारण शिला हो गई थी। वह शिला श्रीरामचन्द्र की चरण–रज पाकर फिर मानवी हो गई थी। इस घटना के वर्णन में विश्वनाथ जी ने अनुपम चमत्कार को प्रदर्शित किया है।

प्रभु श्री रामचन्द्र के पंचेन्द्रियों के प्रभाव से शिला क्रमशः पंचेन्द्रियों को प्राप्त करती है—

प्रभुमेनि पै गालि वच्चिनंतने
पाषाणमोकटिकि स्पर्श वच्चे
प्रभुकालि सव्वडि प्रान्तमैनन्तने
शिलकोक्कदानिकि जेवुलु गलिगे

प्रभुमेनि नेत्तावि परिमळिंचिन तोने
यश्मंबु घ्राणेन्द्रियंबु जेंदे
प्रभुनील रत्नतोरण मंजुलांगंबु
गनवच्चिन रातिकि गनुलु गलिगे
आ प्रभुंडु वच्चि यातिथ्यमुनु स्वीक–
रिंचिनंत नूपल हृदय वीथि
नुपनिषद्वितान मोलकि श्रीराम भ–
द्राभिराम मूर्ति यगुचु दोचे ।

(बाल० अहल्या० पृ. २३३)

(प्रभु (रामचन्द्र) के शरीर पर से आये हुए पवन के स्पर्श मात्र से एक पाषाण में स्पर्श गुण आ गया । प्रभु के चरणों की आहट के होने पर एक शिला में सुनने की शक्ति आ गई । प्रभु के शरीर की सुगंध के दमक उठते ही एक पत्थर को सूंघने की शक्ति मिल गई । प्रभु के नीलरत्न के तोरण के समान मंजुल शरीर के दिखाई पड़ते ही एक पत्थर में देखने की शक्ति आ गई । इस प्रकार उस प्रभु के आकर आतिथ्य स्वीकार करते ही एक पत्थर के हृदय में-उपनिषद वितान में श्रीरामचन्द्र जी की रमणीय मूर्ति दिखाई पड़ी ।)

श्रीरामचन्द्र ने बनवास करते समय अनेक मुनियों के दर्शन किये । उनमें अगस्त्य–दर्शन को प्रधान माना जाता है । भविष्य में रावण संहार के लिए अगस्त्य ने श्रीरामचन्द्र को अस्त्र प्रदान किये । उसके बाद उस वन में ऐसा कोई मुनि नहीं था जिसका दर्शन श्रीराम ने न किया हो । बाद की कहानी सीतापहरण के लिए भूमिका तैयार करने की है । अगस्त्य ने राम से कहा कि सीता जिस किसी चीज की कामना करे, उसके लिए 'न' नहीं कहना । 'माया हिरण को सीता की इच्छा के अनुसार 'न' नहीं करके लाना' यह भावी कथा की सूचना अगस्त्य द्वारा दी गई है। इसी प्रकार विश्वनाथ जी कल्पतरु में कभी किसी घटना विशेष के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण बातें कहते हैं तो वे आगे चलकर कहानी में पाई जाती हैं । इस प्रकार के कई उदाहरण रामायण कल्पवृक्ष में मिलते हैं––

वातापि–इल्वल की कथा गार्गेयी से सीता सुनती हैं और रामचन्द्र जी को सुनाती है । किसी कहानी के संबंध में कुछ जानकारी रखने वालों को और उस कहानी के बारे में कुछ भी नहीं जानने वालों से कहने के विधान में सहज

भेद होता है। वातापि–इल्वल नामक राक्षस रहते थे। प्रथम श्रेणी के श्रोताओं के लिए इस प्रकार कहानी का प्रारंभ करने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा कहना तो दूसरे प्रकार के श्रोताओं के लिए होता है। कथा गार्गेयी से कही गई है–दडंकवन में ऋषि–मुनियों की बाधाएँ निवृत्त होना इसका मुख्य उद्देश्य था। इसलिए सदव्रतगण (ऋषिमुनि) के प्रवृत्ति–निरूपण से कहानी का प्रारंभ हुआ––

पूनिक लेक, यल्ल मरु पूटकु नैननु गूडबेट्टुको
रानि व्रतस्थुलौ क्षिति सुरप्रकरंबेवडो कुटुंबि य–
न्नानिकि रम्मनंग दिनिनन् क्षुध तीरट गाग नै यर–
ण्यानि जरिंचु सद्व्रतिगणम्मुन जूचिन दोंगतिडियै।

(अरण्य. पृ. ४४)

इस कथा में वातापि–इल्वल ने सदव्रतगण को पीडित किया। जिस प्रकार गिरगिट धोखा देकर चींटियों को खा जाता है उसी प्रकार ऋषि–मुनियों को भरोसा दिलाकर वे राक्षस उन्हें धोखा देकर खा जाते थे। वातापि बकरा बनता था। इल्वल ब्राह्मण को लाकर आतिथ्य स्वीकार करने के लिए बाध्य करता था। ब्राह्मण पुण्यात्मा है इसलिए बकरे को खाना पुण्य से युक्त काम होता है। अतिथियों को लाने में इल्वल की वाक् चमत्कृति द्रष्टव्य है–

स्वामि! भवादृशुंडु मा
यिरुवुन केगुदोंचि योक यिन्नि जलंबुलु पुच्चुकोन्न चो
बरुवदिनट्टि कुक्षिकिनि बापपु दिंडि भुजिंप लेनु, नि–
ष्ठरमु गृहस्थ धर्ममु कडुन मिमुबोलिन वारु लेनिचो।

"इस प्रकार बुलाने से किसी कारण वश यदि कोई ब्राह्मण नहीं आता तो पीठ पर उठाकर ले चलूंगा ऐसा कहता है" यह उसकी पद्धति थी। अगस्त्य महामुनि ने आतिथ्य को स्वीकार किया, वातापि को खाकर जीर्ण कर लिया। इस प्रकार श्रीमद्रामायण कल्पवृक्ष में कई घटनाएँ कथा शिल्प की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं। अतः श्रीमद्रामायण कल्पवृक्ष शिल्पवृक्ष ही है।

तेलुगु साहित्यकारों के अनुसार मधुर एवं सुलभास्वाद योग्य वस्तु द्राक्षापाक है। छिलका निकाल कर खाये जाने वाले केले के समान मधुर होता है कदवीपाक। जिस प्रकार नारियल सख्त होता है और दाँतों से चबा-चबाकर खाने पर ही उसका स्वाद मालूम होता है उसी प्रकार तेलुगु साहित्य में नारिकेळ पाक मधुर और सख्त होता है। आन्ध्र वाङ्मय के आलोचकों के अनुसार विश्वनाथ सत्यनारायण जी की कविता नारिकेळ पाक के समान होती है। संस्कृत कवियों ने भी संस्कृत संधियों का प्रयोग उस प्रकार नहीं किया, जिस प्रकार विश्वनाथ जी ने किया है। आपने अपनी कविता में देशी और संस्कृत छन्दों का बड़ी सफलता के साथ प्रयोग किया है। मुहावरों और समासों का उचित रूप से प्रयोग करना आप ठीक-ठीक जानते हैं। शब्दालंकारों का सुन्दर प्रयोग आपने किया। आपके प्रत्येक पद्य में एक नया ढंग प्रतीत होता है। आपकी कविता प्रौढ़, गम्भीर और मधुर होती है। आपकी लेखनी अब भी अबाधगति से चल रही है।

कवि सम्राट् विश्वनाथ सत्यनारायण जी निस्संदेह तेलुगु साहित्याकाश के रवि हैं।

--:o:--

तेलुगु लोकसाहित्य में रामायण

वै० लक्ष्मीबाई

कविता किसी भी भाषा में क्यों न लिखी जाय, यदि उसमें मन को छूने की शक्ति हो तो वह अपूर्व एवं शाश्वत बन जायगी। ऐसे काव्य के रसास्वादन से पाठक आनंद विभोर होकर कभी नाचता है तो कभी हँसता है, कभी रोता है तो कभी गाता है, और यहाँ तक कि अपने आपको खो बैठता है। ऐसी कविता के लिए छन्दों के बन्धन अथवा व्याकरण के बन्धनों की परवाह नहीं होती। यही लोक साहित्य की विशेषता है।

लोक साहित्य में सर्व प्रथम काव्य की सृष्टि किसने की, इसका तो हम निर्णय नहीं कर सकते. किन्तु यह तो मानी हुई बात है कि इसका प्रचार तो ग्रामीण जनता में ही ज्यादा हुआ है। लोकगीतों का इतना प्रचार न होता तो यह कहने में सदेह है कि हमारी संस्कृति इस प्रकार पनप सकती थी। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से आक्रान्त हमारी भारतीय संस्कृति को यथा पूर्व स्थिर रखने का श्रेय लोक साहित्य को ही हैं।

वेदों के बाद भारतीय जन मानस के लिए रामायण, महाभारत और भागवत ही पूजनीय हैं। राम, कृष्ण, धर्मराज आदि पात्र भारतीय जनता के लिए नित्य स्मरणीय और मार्गदर्शी है। सुख-दु:ख, शादी-ब्याह, आमोद-प्रमोद सभी विषयों में, यहाँ तक कि पैर में एक छोटा सा काँटा चुभ जाय या वैकुण्ठ ही मिल जाय तो भी ग्रामीण जन भगवान रामचन्द्र को ही स्मरण करते हैं। यह भावना देश भर में एक ही प्रकार परिव्याप्त है। राम और राम कथा का प्रभाव आन्ध्र देश की जनता के हृदय पर अमिट रूप से अंकित है।

आन्ध्र की ग्रामीण जनता श्रीराम को पिता और सीतम्मा को माता मानती आयी है। उन्होंने अपने सर्वस्व सीताराम को अर्पित किया। वे ऐसा अनुभव करते है कि सीताराम को स्वयं अपनी आँखों से देख रहे हों। सीताराम के दैनिक कार्यक्रम, विहार, जीवन लीलाएँ आदि का वे ऐसा वर्णन करते हैं मानों वे उनके सगे हैं, अपने परिवार के आत्मीय सदस्य हैं। कृष्णवेणी और

गोदावरी नदियों के कल-कल ध्वनि से तेलुगु लोग जितना परिचित हैं, उतना ही राम और सीता के हृदय से।

लोक साहित्य में रामायण की इतनी मान्यता है कि जानपदों की रचनाओं के द्वारा रामकथा का विस्तार और विकास होता ही गया। शिष्ट साहित्य में दिखाई न देनेवाली घटनाएं लोक साहित्य की रामकथा में वर्णित हैं। विद्वानों का विचार है कि रंगनाथ रामायण, भास्कर रामायण में जो अवाल्मीकिय प्रसंग हैं, उनका मूल स्रोत आन्ध्र का लोक साहित्य ही है। मेरा तो विचार है कि रामायण के उन लेखकों ने लोक साहित्य में से थोडी सी सामग्री ग्रहण की और बहुत कुछ उन से अछूता रह गया।

रामायण सम्बन्धी लोक साहित्य के दो विभाग किए जा सकते हैं। प्रथम वर्ग में उन रचनाओं को ले सकते हैं जिनमें राम की कथा सांगोपांग है। द्वितीय वर्ग में उन रचनाओं को ले सकते हैं, जिनमें रामकथा के किसी एक अंश को लेकर मुक्तक रचना प्रस्तुत की गई है। रामकथा का समग्र वर्णन करने वाले प्रमुख लोक गीत इस प्रकार हैं :—

शारदा रामायणमु, कूचकोंड रामायणमु, धर्मपुरी रामायणमु, रामकथा सुधार्णवमु, मोक्षगुंड रामायणमु, सूक्ष्म रामायणमु, संक्षेप रामायणमु, गुत्तेनेदीवि रामायणमु, अडिव गोविन्द नामालु, शांत गोविन्द नामालु, सेत्र गोविन्द नामालु, श्री राम दंडमुलु, श्रीमद्रामायण गोब्बिपाट आदि।

शारदा रामायण :–

इसमें दशरथ के पुत्रकामेष्टि से लेकर रावण वध और राजतिलक तक की कथा वर्णित है। कवि राम भक्त हैं। पढे लिखे मालूम होते हैं। कहीं-कहीं अत्यन्त मनोहर कल्पनाएँ मिलती हैं। कहीं कहीं प्रबन्ध शैली सा लगता है। इस में हनुमान द्वारा लंका की स्त्रियों का वर्णन बहुत सुन्दर है। "शारदकांडु" नामक विशेष जाति वालों के द्वारा गाये जाने के कारण इसका यह नाम पडा।

शान्त गोविंद नामालु :–

इस में श्रीराम के विवाह की कहानी का वर्णन है। शान्तम्मा जो श्रीराम की बहन है, उसको प्रधानता दी गई है। कैकेई को दुष्ट नारी के रूप में चित्रित किया गया है। ऋषि दंपति के शान्ता को दशरथ के हाथ सौंपना,

शान्ता का विवाह ऋष्यशृंग से होना, परशुराम के घमंड चूर चूर करना आदि प्रसंगों का सुन्दर वर्णन हैं।

अडवी या चर गोविंद नामालु :–

इस में श्रीरामचन्द्र का वनगमन, सीता के अपहरण की कथा का वर्णन है। राम का विरह वर्णन करुण रस पूर्ण है। कुंभकर्ण को जगाने का प्रसंग अत्यन्त हास्य रस पूर्ण है। कैकेई का चित्रण कुछ सीमा तक उदात्त रूप में किया गया है। सीताराम और लक्ष्मण के अयोध्या को वापस आते समय सीता ने वानर स्त्रियों को देखकर जो व्यवहार किया वह स्त्री हृदय का द्योतक है। प्रत्येक चरण के बाद 'गोविंद' की आवृत्ति के कारण, इन लोक गीतों का नाम 'गोविंद नामालु' पड़ा है।

कुशलव कुच्यल चरित्र :–

इस में अयोध्या में राज तिलक के बाद राम धोबी की बातों पर सीता को वन भेजने का निश्चय करते हैं, तब ऊर्मिला आदि बहुएं सीता को वन न भेजने की प्रार्थना करती हैं। राम उनकी बातें नहीं सुनते। आपस में उपालंभ युक्त बाते होती हैं। इसमें बालक कुशलवों के युद्ध करने की निपुणता का सुन्दर वर्णन है।

कुशलव युद्धः–

कवि के अनुसार यह प्रसंग वाल्मीकि रामायण के अनुसार लिखा गया है किन्तु इसमें विचित्र कल्पनाएँ ज्यादा मिलती हैं। केवल लक्ष्मण को ही मालूम है कि कुशलव राम के पुत्र हैं। पहले वे कुशलवों के पास जाकर जासूसी संभाषण करते हैं। बाद में सभी लोगों की तरह युद्ध करते हैं। कुशलव हनुमान को पकडकर सीता के पास ले जाते हैं। राम अंगद और विभीषण को संधि के लिए भेजते हैं। विभीषण उनसे कहते हैं कि राम विष्णु के अवतार हैं तब वे पूछते हैं तो लक्ष्मी कहाँ है। राम ब्रह्मा, शंकर और इन्द्र की मदद चाहते हैं तो सरस्वती, पार्वती, शची अपने पतियों को रोककर कुशलवों का पक्ष लेती हैं। कुशलव कहते हैं कि राम हमारे सामने नमस्कार करें तो वे युद्ध स्थगित करेंगे। अंत में राम इस प्रकार उन्हें नमस्कार करते है :–

'शरणु शरणु मा तन्ड्रि दशरथ राज-

पादमुलकु कुलगुरुवु वशिष्ठुलकु,

शरणु शरणु मा कौसल्या चरणारविंदमुलकु

शरणननि चक्रधरुडे पलिकेनट

(राम अपने माता पिता और गुरु को मन में ध्यान करके कुशलव के सामने सिर झुकाते हैं।)

लक्ष्मण मूर्छ :-

इस प्रसंग के वाल्मीकि रामायण में होने पर भी कालनेमी का प्रसंग अवाल्मीकीय है। विभीषण की रक्षा करने के लिए लक्ष्मण जाते हैं तो वे स्वयं रावण के शक्ति बाण से मूर्छित हो जाते हैं। तब राम इस तरह विलाप करते हैं :-

"चेरु तेगिन मृत्यमुलु चेदरिरालिन गति

रालेनु कन्नीरु रामु कन्नूलनु"

(गूंथे हुए हार से टूटकर बिखरे मोतियों की तरह राम की आँखों से आँसू टपक पड़े।)

हनुमान को बुलाकर राम इस प्रकार कहते हैं :-

"इललो नल्गुरमु अन्नदम्मुलमु,

इटुपैन मा तोटि हितवु मीरंग

ऐदव वाडगुचु अलरु चुंदुवु नीवु"

(हम चार भाई हैं आगे से तुम हमारे साथ पाँचवा बनकर रहोगे।)

ऐसा कहकर हनुमान को संजीवनी बूटी लाने को भेजते हैं। रावण हनुमान को रोकने के लिए कालनेमि नामक राक्षस को भेजता है। कालनेमि को पराजित करके, रास्ते की कई यातनाओं का पार कर हनुमान अंत में संजीवनी बूटी लातें हैं और लक्ष्मण को पिलाते हैं।

लंका यागमु :-

आन्ध्र जनता में इसका प्रचार ज्यादा है। कैकेयी के इच्छानुसार राम के वनगमन के अवसर पर लक्ष्मण माता की आज्ञा लेकर वन जाने को

तैयार होते हैं। ऊर्मिला भी पति के साथ वन जाने को तैयार होती है। लक्ष्मण यह कहकर उसे रोकते हैं कि जेठ के चले रास्ते पर चलना ठीक नहीं है।

शतकण्ठ रामायण:–

पासगाड सन्यासी नामक कवि ने इसकी रचना की थी। यह रचना यक्षगान के रूप में रची गई है। दशकंठ को मारने वाले राम से बदला लेने के लिए शतकंठ भीषण तपस्या करके भगवान से कई वर प्राप्त करता है। शतकंठ और राम में भयंकर युद्ध होता है। अंत में शतकंठ की मृत्यु सीता के हाथ से होती है। इस में हनुमान का विश्वरूप संदर्शन एक विचित्र कल्पना है।

राम कथा के किसी न किसी अंश को लेकर रचे गये लोक-गीत मुक्तक काव्य की कोटि में आते हैं। उनमें कुछ लोकप्रिय गीत निम्न प्रकार हैं।

पुत्र कामेष्टि :–

इस गीत की कवयित्री श्री गोदानायकम्मा है। दशरथ पुत्रकामेष्टि करके पुत्रों को पाते हैं। इस में एक विचित्र कल्पना है कि विश्वामित्र के साथ निकले हुए राम, शिव धनुष को तोडने से पहले ही सीता से मिलते हैं और दोनों में परस्पर वार्तालाप भी होता है। अंत में फलश्रुति में ऐसा लिखा गया है कि जो यह गीत बतकम्मा के त्यौहार के समय गायेंगी, उन्हें अवश्य संतान की प्राप्ति होगी।

कौसल्या बैकलु :–

इसकी कवयित्री शिवगंबूर अन्नपूर्णम्मा हे। इसमें आन्ध्र जनता के गृहस्थ जीवन का चित्रण प्रभावशाली ढग से किया गया हैं।

पाताल होम :–

इसके कवि विद्वान मंदारामुडु शास्त्री हैं। इसमें रावण शुक्राचार्य के पास जाकर राम को पराजित करने का उपाय पूछता है। शुक्राचार्य ने बताया कि पाताल होम करो, जिससे तुम्हारी विजय होगी। रावण ने यज्ञ करना प्रारंभ किया। राम को यह समाचार मिला तो उन्होंने यज्ञ भंग करने के लिए वानर लोगों को भेजा। अंत में अंगद की सहायता से यज्ञ का भंग हुआ।

गुह भरत का अग्नि प्रवेश :–

राम के अयोध्या लौटने में विलंब होता है तो गुह और भरत अग्नि प्रवेश करने को उद्यत होते हैं। ठीक समय पर हनुमान वहाँ पहुँच कर राम के आगमन का समाचार देते हैं। हनुमान कैकेयी के पास जाकर इस प्रकार पूछते हैं कि अतीत में राम एक थे, इसलिए उन्हें आसानी से बन में भेजा। आज तो हम बहुत हैं आप किसको वन जाने की आज्ञा देती हैं, जल्दी बताइये। कैकेयी के प्रति वेदना युक्त क्रोध को हनुमान इस प्रकार व्यक्त करते हैं।

कुशलायकमु :–

पेद्दमज्ज पालेम के रहनेवाले पापराज ने रामायण और विचित्र रामायण के आधार पर इस गीत को लिखा था। कठिन समास युक्त शैली को मामूली जनता नहीं समझ सकेगी, इसलिए सरल शैली में यह गीत लिखा गया। श्रीरामचन्द्र के जन्म से लेकर राज तिलक तक की कथा संक्षेप में लिखी गयी है और कहीं कहीं विचित्र कल्पनाओं से भरी कहानियाँ हैं।

केवल सीता देवी को आलंबन बना कर लिखे गये गीत बहुत हैं। सीताकल्यानमु (सीता की शादी) आनवालु (चिह्न) सीताम्मा का अग्नि प्रवेश, माया लेडी पाट (माया मृग का गीत) सीतम्मा चेर (सीता की कैद) कोयल का दौत्य आदि उल्लेखनीय हैं।

अब तेलुगु के रामायण संबन्धी गीतों के कुछ मार्मिक प्रसंगों का परिचय दिया जाएगा जो कवि-कल्पना की दृष्टि से अत्यन्त रोचक हैं। निम्न लिखित दो प्रसंग कवि के कल्पना कौशल तथा रचना चातुर्य के ज्वलंत प्रमाण हैं।

रावण का वध करने के बाद राम अयोध्या वापस आये। राम का राजतिलक अति वैभव से हो रहा है। उस भरी सभा में लक्ष्मण हँग पडते हैं। इस हँसी का कारण किसी को मालूम नहीं होता। सभा के सभी लोग यही समझते हैं कि मेरी कमजोरी को देखकर ही लक्ष्मण हँस रहा है। शंकर ने समझा कि जालारि कन्या (मछुए की कन्या) को सिर पर रखने के कारण लक्ष्मण हँस रहा है। विभीषण ने समझा कि भाई को मारकर गद्दी पर बैठा हूँ, इसलिए लक्ष्मण हँस रहा है। सीता ने समझा कि मनमाने बोलने वाली स्त्रियों का विश्वास न करना चाहिए था। राम ने समझा कि दशकंठ के यहाँ रही सीता को मैंने अपने बगल में बिठाया। "अस्तमेति गभस्तिमान"

नामक वाक्य से नानाव्यंग्यार्थ निकलते हैं वैसे ही लक्ष्मण की हँसी से हर एक के मन में कई प्रकार के भाव उठ रहे हैं। सभा के सभी लोग उदास हो गये। तब राम को गुस्सा आता है। वे हँसी का कारण पूछते हैं। लक्ष्मण हँसी का कारण बताने में आगेपीछे होते हैं। राम क्रोध में आकर लक्ष्मण को मारने के लिए तैयार होते हैं। लक्ष्मण तब अपने भाई को इस प्रकार बताते हैं कि चौदह साल तक वे नींद से दूर रहे। आज उन्हें भरी सभा में नींद आयी। चौदह साल तक न आनेवाली नींद आज एक घड़ी भर तक नहीं रुक सकी, इसलिए हँसी आयी। राम बहुत पछताते हैं, और उसी क्षण अपने को मारने के लिए तैयार होते हैं। वशिष्ठ आदि मुनिगण उन्हें रोकते हैं। प्राय-श्चित्त का उपाय इस प्रकार बताते हैं कि लक्ष्मण को सोने की आज्ञा दीजिए और भरी नींद में लक्ष्मण के पाँव दबाइये। राम वैसा ही लक्ष्मण के पैर दबाते हैं। लक्ष्मण को पहले पहल स्वप्न सा लगता है। थोडी देर के बाद उनकी नींद टूट जाती है। वे झट उठकर भर्राये हुए स्वर में कहते हैं कि आप तो पुण्य पुरुष हैं। आपके पैर के स्पर्श से पत्थर भी पवित्र देवी बन गयी और पावन चरण से बलि चक्रवर्ति का उद्धार हुआ। यह कहकर लक्ष्मण राम के पैरों पर गिरते हैं। राम लक्ष्मण को उठाकर गले से लगा लेते हैं। और राम लक्ष्मण को ऊर्मिला देवी के पास जाने की आज्ञा देते हैं। तब लक्ष्मण को ऊर्मिला की सुधि होती है। वह दौडे दौडे अंतः पुर में पहुँचते हैं।

तेलुगु लोक साहित्य में अति लोकप्रिय गीत ऊर्मिला देवी की निद्रा है। भले ही शिष्ट लोगों ने ऊर्मिला की ओर उपेक्षा की दृष्टि से देखा हो फिर भी ग्रामीण लोग तो उसे भूल नहीं पाये। यद्यपि सीता को प्रथम स्थान दिया किन्तु ऊर्मिला को अमर बना दिया। पति की आज्ञा के बिना ही सीता वन जाने को तैयार हुई। ऊर्मिला भी वन जाने को तैयार तो हुई किन्तु लक्ष्मण यह कहकर रोकते हैं कि जेठ के चले हुए रास्ते पर जाना तुम्हारे लिए उचित नहीं है। वे ऊर्मिला को अयोध्या में छोडकर चले गये। बेचारी पतिता पति की आज्ञा का उल्लंधन नहीं कर सकी। उसी से वह पूरे चौदह वर्ष नींद में पडी रही।

भाई के कहने पर लक्ष्मण को ऊर्मिला की याद आती है। वह एका एक जाकर ऊर्मिला के पलंग पर बैठता है और इस प्रकार कहने लगता है।

"कोम्म नी मुद्दु मुखमु सेविंप गोरिनाडे चन्द्रमा"
(हे सुन्दरी ! तुम्हारे सुंदर मुख की सेवा करने के लिए चन्द्रमा आया है ।)

चौदह साल तक नींद में डूबी हुई ऊर्मिला को एक दम ऐसा संभाषण सुनकर संदेह होता है कि कहीं कोई अन्य पुरुष तो आकर पलंग पर नहीं बैठा है । वह कहने लगती है :

"अय्य मीरेव्वरय्या, मीरिंत आगडम्मुन कोस्तिरि
मायक्क मरिदि विन्न मिम्मिपुडु व्रतक निव्वरु"

(महाशय ! आप कौन हैं ? इस प्रकार गुस्ताखी करने को उद्यत हुए । यदि मेरी दीदी के देवर सुन लेंगे तो आप को जिन्दा नहीं छोड़ेंगे ।)

"हेच्चैन वंशानिकि अपकीर्ति वच्चे नेनेमिसेतु
कीर्तिगल इंट बुट्टि यपकीर्ति वच्चे नेनेमिसेतु"

(मैं ऊँचे वंश में पैदा हुई हूँ और ऊँचे वंश में आयी हूँ । कहीं आपके कारण उन दोनों वंशों पर कलंक न लग जाय ।)

"ओकडाली कोरिगादा इन्द्रुनिकि वडलेल्ल हीनमाये
पर सतिनि कोरिगादा रावणुडु मूलमुतो हतमायेनु
ओकडाली कोरिगादा कीचकुंडु प्राणालु गोलुपोये ।"

(आपको मालूम ही है कि दूसरों की पत्नी की चाह करके इन्द्र, रावण और कीचक की गति क्या हुई है ।)

तब लक्ष्मण उन्हें कई प्रकार से समझाते हैं । ऊर्मिला एक नहीं सुनती । लक्ष्मण तलवार से अपने को मार डालने के लिए तैयार होते हैं, तो ऊर्मिला की नींद पूरी तरह खुल जाती है । वह पति को पहचानती है । अपनी भूल को समझकर पति के पैरों पर पड़ती है । फिर भी अपने मन की भावनाओं को नहीं रोक सकती । वह निष्ठुर होकर कुछ कटूक्तियाँ कहती है :

"मा तन्ड्रि जनक राजु मिम्मु नम्मि मरचि पेंड्लि चेसेनु
चित्त मोक्क दिक्कु नुंचि समयमुन चिन्न पुत्तुरु पुरुषलु"

(मेरे पिताजी ने आप पर विश्वास कर आप से मेरी शादी की । आप तो दूसरे के कार्य में लग गये और मेरी परवाह ही नहीं कर रहे हैं । यह तो पुरुषों का स्वाभाविक गुण है ।)

अंत में पति–पत्नी में सुलह हुई। लक्ष्मण ने सीता के अपहरण की समस्त कथा सुनाई। इस कहानी को सुनकर ऐसी कोई नारी नहीं होगी जिसकी आँखें भर न आवें।

इस प्रकार ग्रामीण लोगों ने रामायण की कथा तथा प्रसंगों को अपनी मनः प्रवृत्ति के अनुसार चित्रित किया। ये ही प्रसंग जो अवाल्मीकीय हैं परवर्ती कवियों के काव्यों में-शिष्ट साहित्य में-स्थान प्राप्त कर सके हैं। तेलुगु रामकाव्य में प्राप्त अवाल्मीकीय प्रसंगों का उल्लेख करना असंगत नहीं होगा।

धनुष तोडने के लिए राम विश्वामित्र के साथ मिथिला गये थे। राम पहले ही छद्म वेष में सीता से मिलते हैं। मुनि के भेष में राम को देखकर सीता उन्हें सचमुच मुनि ही समझती हैं। वे उस कुहनायति की सेवा करके वर माँगती हैं कि राम के साथ मेरा विवाह संपन्न हो जाए।

X X X

लक्ष्मण जंगल में फलों के लिए घूमते रहते हैं। शूर्पणखा का पुत्र जंबुमाली वन में तप कर रहा था। चन्द्र देवता ने उसके तप से प्रसन्न होकर एक अद्भुत तलवार भेजी। वह तलवार लक्ष्मण के हाथ में आयी। लक्ष्मण तलवार की धार को देखने के लिए अगल-बगल की झाडियों को काटने लगे। एक झाडी में तप करते हुए जंबुमाली को तलवार लग गयी। उनके शरीर के दो टुकडे हुए। यह देखकर लक्ष्मण बहुत दुःखी हुए। शूर्पणखा को यह मालूम हुआ तो वह राम और लक्ष्मण को मारने के लिए दौडी-दौडी आयी। राम और लक्ष्मण के सौंदर्य को देखकर वह मग्ध हो गई। उसका गुस्सा पानी पानी हो गया। राम से शादी करने की इच्छा प्रकट की। राम ने उसकी पीठ पर कुछ शब्द लिखकर लक्ष्मण के पास भेजा। लक्ष्मण ने उसके कान और नाक काट डाले। शूर्पणखा रोती–बिलखती अपने भाई रावण के पास पहुँची और सीता के सौंदर्य का वर्णन करके रावण को भडकाया।

X X X

रावण के शक्ति-बाण से लक्ष्मण मूर्छित हो गये। तब राम का विलाप बहुत करुणाजनक है। वे इस प्रकार रोते हैं।

> "इंकेन्नि जन्मल तपसुना नीवंटि आत्म बन्धु सुतुडु गलुगु
> विनवोई लक्ष्मण सीतवंटि स्त्रीनि बडयंग वच्चु गानी
> अरण्य वासमुलो यवनिजकु तमकु आंहार निद्रलेक
> अट्टवंटि सोदरुडु, तनकेट्लु गलगुनु एन्नि जन्मलकैना।"

(कई जन्मों के पुण्य फल से तुम्हारा जैसा भाई मिल गया। सीता जैसी पत्नी को पा सकता हूँ किन्तु तुम्हारे जैसे भाई का मिलना मुश्किल है क्योंकि तुम्हारे जैसा आहार-निद्रा को त्यागकर सेवा करनेवाला बिरला ही मिलेगा।

X X X

राम के वन जाने का कारण इस प्रकार बताते हैं कि बचपन में राम ने मंथरा को लात मारी थी। मंथरा ने बदला लेने के लिए कैकेयी के कान भरे थे।

X X X

ग्रामीण मन की एक और विचित्र कल्पना है। अशोक वन में सीता देवी पति के वियोग से अत्यन्त दुःखी थी। वे कोयल से अपनी दीनावस्था बताते हुए संदेशा भेजती हैं। कोयल से बताती हैं कि राम को लिवा लाओ।

मेडदि हारमित्तू कोयलरो
प्राणेश दोडतेम्मु कोयलरो
पक्षि सेसिन पनि कोयलरो
उपकारमु लुंडु कोयलरो।

(यदि तुम मेरे पति देव को साथ ले आओगी तो अपने गले का हार तुम्हें पहना दूँगी। पक्षी के प्रति करने का उपकार तो यही है।)

X X X

रावण की मृत्यु के बाद सीतादेवी राम के पास आती हैं। राम यह कहकर उनका तिरस्कार करते हैं कि कुत्ते के छुए हुए आहार को कौन ग्रहण करेगा ? सीता अग्नि देवता से प्रार्थना करती हैं। वे अग्नि में प्रवेश कर सुरक्षित वापस आती हैं। राम यह कहकर टाल देते हैं कि स्त्रियों की अग्नि रक्षा करता ही है। तब देवता लोग आकर सीता के पातिव्रत्य के बारे में बताते हैं। तब राम सीता को अपनाते हैं।

X X X

एक दिन सीतम्मा शांतम्मा से हंसी-मजाक करती बैठी रहीं। राम के कई बार बुलाने पर भी नहीं गयी। राम को गुस्सा आया। उन्होंने लक्ष्मण से अपने तीर-कमान मगँवाकर उन्हें स्त्रियों के रूप में बदल दिया। वे स्त्रियाँ (तीर-कमान) रामचन्द्र की सेवा इस प्रकार करने लगी—

'वेडुकतो विंजामर विसरुचु–आकुमुडुपुलु अंदिच्चुचुनु
पादमुलु वत्तुचू श्रीरामुलकु–कूडि उडिरि रामनुतोनु

(पंखा झलती हुई, पान देती हुई और पाँव दबाती हुई वे स्त्रियाँ श्रीराम के संग रहीं।)

यह कोलाहल सुनकर सीता देवी कुतूहलवश देखने आयीं। आते ही सीता एक दम अवाक् रह गयीं। वे व्याकुल हो, आवेश में आकर पूछती हैं–

"एक पत्नी व्रतुडवु यनुचु–इच्चेगाक मा तन्ड्रि अइतेनु
एक पत्नी व्रतमुलु अन्नि तेल्सिगदा इक्कड इलागु"

(आप पक्के एक पत्नी व्रती हैं। यह समझकर हमारे पिताजी ने मुझे आपके हाथ में सौंप दिया था। अब तो एकपत्नीव्रत का सारा अर्थ समझ में आ गया है।)

श्रीराम चुप रह गये। उन मायावी स्त्रियों ने इस प्रकार उत्तर दिया :—

"एक्कड दानवे जानकी नीवु–एप्पटिकि मेमे उन्नामु
अडवुललो नीवु वासिनप्पुडु–अंत वेडुकतो मातो उडे,
विल्लु विरवग वच्चिनदानव–एक्कडिदानवे जानकी।"

(हे जानकी! तुम कहाँ से आयी हो? हमेशा राम के साथ हम ही रहीं। जब तुम वन में राम के साथ नहीं थी, उस समय भी हम राम के साथ रहीं। धनुष तोडने पर ही तुम मिल गयी थी। हम तो सदा उनके संग हैं। तुम कहाँ से आ टपकी हो?)

अंत में शांतम्मा आकर दोनों को समझाती हैं।

इस प्रकार राम की कथा ने तेलुगु ग्रामीण जनता के हृदय में अद्वितीय रूप से घर कर लिया है। आंध्र देश में पल-पल और पग-पग पर राम के ही दर्शन होते हैं। क्या गृहस्थ जीवन, क्या आदर्श जीवन, क्या घर, क्या जंगल प्रत्येक स्थान पर उन्हीं आदर्श दंपतियों की कथा ने ग्रामीण जन–जीवन को पूर्ण रूपेण अभिभूत कर लिया हैं।

—:o:—

तमिल वाङ्मय में रामायण

डॉ. चल्ला राधाकृष्ण शर्मा

रामकथा ऐसी रसवत्कथा है, जिसने साहित्यिक दृष्टि से उत्तर और दक्षिण भारत को एक कर दिया। रामकथा पंडित और पामर - दोनों को समान रुप से प्रसन्न करने वाली रमणीय कथा है। फिर भी रामकथा मृत पुराण नहीं है; वह तो सजीव और सुन्दर कथा है। यदि रामकथा-संबंधी प्रचलित कहावतों एवं लोकोक्तियों का अवलोकन करें, तो यह विषय और स्पष्ट हो जाता है।

"वल्लवनुक्कुप् पुल्लुं आयुदं" (बलवान के लिए तृण भी आयुध बन जाता है) नामक कहावत आज भी तमिलनाडु में प्रयोग में है। यह कहावत काकासुर का वृत्तांत बताती है। जब इंद्र का पुत्र जयंत मलिन मन के साथ कौए का रूप धारण कर सीताजी के पास गया, तब राम ने पास पड़ा तृण उसकी ओर फेंक दिया। वही उसके लिए रामबाण सिद्ध हुआ। तब से शायद वह कहावत प्रचार में आयी होगी कि बलवान के हाथ में निरुपयोगी तृण भी सबल अस्त्र बन जाता है।

इसी काकासुर के वृत्तांत को बतानेवाली कहावतें और भी कुछ प्रचलित हैं। यथा - "कुरिविक्केट्र रामचरं" (पक्षी के लिए प्रयुक्त रामबाण), "चिट्टुक्कुरिविक्कु रामबाणमा ?" (छोटे पक्षी (गौरैया) पर रामबाण का प्रयोग कहाँ उचित है ?) इत्यादि।

"वडक्के पोन कुरंगु वरविल्लै" (उत्तर दिशा की ओर गया बंदर वापस नहीं आया)- यह कहावत सीतान्वेषण-संबंधी घटना को बताती है। सीतान्वेषण के लिए वानर चारों ओर गये परन्तु दक्षिण दिशा की ओर गया हनुमान मात्र सीताजी का पता लगाकर राम के पास आया।

कहावतें एक दिन में नहीं बनतीं। वे तो वर्षों से प्रचार में रहनेवाले विश्वासों और कथाओं को व्यक्त करती हैं।

इसी प्रकार लोक-साहित्य में भी रामकथा-संबंधी अनेक रचनाएँ उपलब्ध हैं। "अम्मानै," "कुम्मि," "कावडिच्चिंदु," इत्यादि लोकगीतों में भी रामकथा अभिव्यक्त है। एक ढेंकली-गीत में रामायण की कथा संक्षेप में वर्णित है।

यह ध्यान देने योग्य विषय है कि आधुनिक लेखक भी रामकथा को लोकगीतों के रूप में रच रहे हैं। इस प्रकार की रचनाओं में टी. वैद्यलिंगं चेट्टियार कृत "रामायणच्चिंदु," के. तिरुमलैसामि अय्यंगार कृत "रामायण क्कप्पल", सी. मुनुस्वामि मुदलियार कृत "रावणन् कुम्मि", रत्न सभापति मुदलि कृत "रामर तालट्टु", त्यागप्पदासर कृत "रामसिगरच्चिंदु", इत्यादि उल्लेखनीय हैं। "तक्कै रामायण" और "कुयिल रामायण" भी लोक साहित्य-कारों से विरचित रामकथाओं में उल्लेखनीय हैं। "कुयिल (कोयल) रामायण" १२८ गीतों का रामायण है।

इनके अतिरिक्त रामकथा-संबंधी अनेक दिल्लगी-बाज़ियाँ भी तमिल भाषा में हैं। एक दिल्लगी-बाज़ी में एक अवाल्मीकीय कथा अभिवर्णित है, जो इस प्रकार है :-

रावण-वध के पश्चात् राम सपरिवार अयोध्या के लिए निकलने के प्रयत्न में थे। तब सीताजी को एक विचित्र-इच्छा हुई। सीताजी ने सोचा कि लंका में प्राप्त होनेवाला एक सुंदर लोढा भी अपने साथ ले चलूं। सीताजी ने वह भार अपने विश्वासपात्र सेवक हनुमान पर रखा। माताजी के आदेशा-नुसार जब हनुमान एक लोढे को उठा रहा था, तब जांबवंत ने वहाँ आकर, हनुमान को देख, उससे प्रश्न किया कि क्या कर रहे हो ? उत्तर में हनुमान ने माताजी की इच्छा के बारे में बता दिया। यह सुनते ही जांबवंत हँसते हुए तुरंत सीताजी के पास गया। जांबवंत ने सीताजी से कहा कि मैंने समुद्र-मंथन, पंचमुख-ब्रह्म, पंखोवाले पहाड़, मीठा समुद्र-जल, मन्मथ का मनोहर रूप, शिव का श्वेत कण्ठ, दो आँखोंवाला इंद्र-इत्यादि कितने ही अद्भुत दृश्य देखे परंतु एक बार दान में दी गई वस्तु को फिर वापस लेने की बात तो अपने सुदीर्घ जीवन में अब तक नहीं देखी। तब सीताजी अपनी भूल जान गयीं। तभी उन्हें ज्ञात हुआ कि विभीषण को लंका का राजा बनाने के बाद वह उसीका साम्राज्य है, अतः उसका प्रत्येक अणु भी उसी का है।

तमिल लोक-साहित्य में महिरावण से संबंधित रचनाएँ भी हैं। "मयिल् रावणन् कदै", "शतकंठ रामायण कदै", इत्यादि महिरावण कथा-संबंधी रचनाएँ हैं।

तमिल वाङ्मय के इतिहास में प्रथम युग "संगयुग" है। यद्यपि संगयुग के काल के संबंध में विद्वानों में मतभेद है, फिर भी निस्संदेह रूप से बताया जा सकता है कि उसका विकास ईसा की प्रथम तीन शताब्दियों में हुआ था।

संगयुग की कृतियों में "अगनानूरु", "पुरनानूरु", इत्यादि उल्लेखनीय हैं। अगनानूर के एक पद्य में रामकथा-संबंधी एक अद्भुत घटना चित्रित है : जब रामचंद्र धनुष्कोटि में एक पीपल-वृक्ष की छाया में बैठकर अपने साथियों से चर्चा कर रहे थे कि किस प्रकार रावण पर धावा करें, तब उस वृक्ष पर बैठी चिड़ियाँ अत्यधिक शोर मचाने लगीं। तब राम ने उनकी ओर लक्ष्य करके देखा, तो सभी चिड़ियाँ मौन हो गयीं। अर्थात् कवि ने उक्त पद्य में यह बताने का प्रयत्न किया कि पक्षी-समूह तक ने राम का पक्ष लिया।

पुरनानूर नामक संकलन-कृति का एक पद्य वानरों-द्वारा आभूषणों को प्राप्त करने वाली घटना के बारे में बताता है: जब रावण सीताजी को उठाकर ले जा रहा था, तब सीताजी ने अपने आभूषण ऊपर से नीचे छोड़ दिये। वे आभूषण वानरों को दिखाई दिये। उन आभूषणों को पहनने की विधि न जान कर असमंजस में पड़, अंत में वानर उन्हें किसी प्रकार पहनकर तृप्त हुए।

"कलित्तोगै" नामक एक अन्य कृति में दशकंठ रावण के हिमवत्पर्वत को उठाने का प्रयास कर, अंत में अपमानित हो जाने के वृत्तांत का वर्णन एक पद्य में किया गया।

"परिपाडल्" नामक एक अन्य कृति में अहल्या की कथा को संक्षेप में व्यक्त करनेवाला एक पद्य दिखाई देता है। तमिलनाडु में प्रचलित कथा के अनुरूप ही इसमें इंद्र का उल्लेख बिल्ली की संज्ञा से किया गया। कारण, इंद्र ने बिल्ली का रूप धारण कर गौतम के आश्रम में प्रवेश किया।

विद्वानों का विश्वास है कि संगयुग में ही तमिल भाषा में उपर्युक्त कृतियों के अतिरिक्त एक रामायण प्रकाश में आया। परन्तु यह रामायण अनुपलब्ध है।

सुप्रसिद्ध पंडित-अनुसंधाता एस० वैयापुरि पिल्लै ने बताया कि कंब कवि के पूर्व ही तमिल में रामायण का उद्भव हुआ होगा। अपने तर्क की पुष्टि में उन्होंने कुछ कारण बताये। यथा–"याप्परुंगलं" नामक लक्षण ग्रंथ की व्याख्या में 'वेण्पा" नामक छंद में लिखित एक रामायण का उल्लेख किया गया। "तोल्काप्पियं" नामक प्रप्रथम लक्षण ग्रंथ के लिये व्याख्यान लिखते हुए नच्चिनार् किनियार् नामक आलोचक ने अपनी व्याख्या में यह बताते हुए एक पद्य का उल्लेख किया कि वह रामायण का है।

पंडितों का अभिमत है कि वेण्बा छंद में एक रामायण की रचना की गयी और वह सन् ६५० ई० के आसपास प्रकाश में आया। प्रसिद्ध विद्वान् मु० राघवय्यंगार का मत है कि प्राचीनकाल में लोग रामायण को "सी (श्री) रामकदै" के नाम से भी पुकारते थे और वेण्बा छंद में कंब कवि के पूर्व ही रामायण की रचना की गयी होगी।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि यद्यपि संगकाल में लिखित "वेण्बा रामायण" बाद के काल में अनुपलब्ध है तथापि महाकवि कंब के पूर्व ही तमिल में एक रामायण प्रकाश में आया होगा। इसके अतिरिक्त यदि तमिल-नाडु के स्थल-पुराणों का अवलोकन करें-तो कई स्थल रामकथा-संबंधी अथवा रामायण के स्त्री-पुरुष-संबंधी दिखाई पड़ते हैं।

यह ध्यान देने योग्य विषय है कि संगयुग के पश्चात् प्रकाश में आये तमिल काव्यों तक में भी रामकथा की प्रशंसा लक्षित है। अर्थात् यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि तमिलनाडु में अति प्राचीनकाल से ही रामकथा प्रचार में है।

तमिल के पंच काव्यों में "सिलप्पदिकारं" (मंजीर गाथा) एक है। तत्काव्य-नायक कोवलन् को दुर्भाग्य से अपने नगर पुहार (काबेरी पूंपट्टिणं) को छोड़कर पांड्य-राजधानी मदुरा नगर जाना पड़ता है। इस विषय का वर्णन करतें हुए सिलप्पदिकार-काव्य कर्ता इलंगो अडिगळ् (पूज्यपाद) ने बताया कि कोवलन् के चले जाने के पश्चात् पुहार शहर बिना राम के अयोध्या के समान है। मदुरा नगर की सीमा तक पहुँचने के पश्चात् कोवलन् अपनी पत्नी कण्णकी को काउंदी अडिघल् नामक सन्यासिनी के पास छोड जाता है। तब वह अपने सांत्वना भरे शब्दों में कोवलन् को इस विषय की याद दिलाती है कि प्राचीनकाल में पत्नी-वियोग के कारण राम और नल भी अत्यन्त दुःखी हुए थे।

तमिल के पंच काव्यों में एक और काव्य "मणिमेखला" में भी रामकथा की प्रशंसा परिलक्षित होती है। वानरों के बड़े-बड़े पहाडों को समुद्रमें फेंककर सेतु के निर्माण में रामचंद्र की सहायता करने के वृत्तांत का उल्लेख इसमें कवि एक स्थान पर करता है। मु० राघवय्यंगार के मतानुसार यहाँ उल्लिखित सेतु कन्याकुमारी की ओर संकेत करता है। उनका अभिमत है कि यही आदि-सेतु है और जो सेतु धनुष्कोटि के पास है, वह मध्यसेतु है। तमिल काव्यों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि कन्याकुमारी एक पवित्र स्थल समझा जाता रहा है और कई लोग वहाँ जाकर समुद्र-स्नान करते रहे हैं। इसके अतिरिक्त "आसेतुहिमाचलं" नामक संस्कृत समास का ठीक पर्यायवाची तमिल-समास "कुमरिमुदल् इमयं वरै" है। जब सेतु शब्द का प्रयोग किया जाता है, तब कन्याकुमारी का ध्यान हो आता है।

अतः उपर्युक्त विषयों का परिशीलन करते हुए कहा जा सकता है कि तमिलनाडु में कंब कवि के पूर्व ही रामकथा बहुत प्रचार में है और "कंब रामायण" के प्रकाश में आने के पश्चात् उसी रामायण को प्रचुर प्रचार प्राप्त हुआ।

कुछ लोगों का विश्वास है कि एक जैन कवि-द्वारा तमिल में रचित रामायण आज उपलब्ध नहीं है। तिरसठ महापुरुषों के जीवन की विशेषताओं का वर्णन करने वाले "श्री पुराणं" नामक काव्य के बीसवें तीर्थंकर मुनीश्वर स्वामी की कथा में राम का वृत्तांत अभिवर्णित है। उस कथा में श्री पुराण कर्ता ने सीताजी के दुःख को प्रकट करने वाले कुछ पद्यों की रचना की। इन पद्यों की शैली तथा श्रीपुराण की शैली में पर्याप्त अंतर है। अतः पंडितों का मत है कि उदाहृत पद्य श्रीपुराण-कर्ता के नहीं हैं और वे जैन रामायण के अंतर्गत हो सकते हैं। जैनियों की कथा में हनुमान अणुमहान् बन गया। वालि का संहार लक्ष्मण करता है। विभीषण भी रावण का आश्रय लेता है। रावणासुर का संहार करने वाला लक्ष्मण है, राम नहीं। युद्ध के पश्चात् राम दीक्षा लेता है। तत्पश्चात् मोक्ष प्राप्त करता है। अणुमहान् प्रभृति भी दीक्षा लेते हैं। मात्र लक्ष्मण नरक में जाता है।

तमिल साहित्य के इतिहास में भक्त कवि आल्वार और नायन्मार द्वारा रचित गीत अत्यंत उल्लेखनीय हैं। वे गीत भक्ति-रस से ओतप्रोत हैं।

जब तक वैष्णव-भक्त शिखामणि आल्वार साहित्यिक क्षेत्र में अवतरित हुए तब तक वाल्मीकि द्वारा आदर्श मानव के रूप में वर्णित राम अवतार पुरुष

के रूप में बदल गया। तब से यह भावना प्रचार में आयी कि राम विष्णु के अंश से जनित हैं। तत्फलस्वरूप उद्भूत काव्य रामायण पवित्र ग्रंथ के रूप में माना गया। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

यद्यपि आलवारों ने कृष्णावतार संबंधी गाथाओं का ही प्रचुर मात्रा में अपने गीतों में वर्णन किया तथापि उनमें राम के प्रति भी भक्ति अवश्य है। विष्णुचित्त नामक भक्त (पेरियाल्वार) ने रामकथा-संबंधी दस पाशुरमों भक्ति प्रधान भजन) की रचना की। इनमें केवल सीता और राम मात्र की ही ज्ञात घटनाओं का वर्णन किया गया। उनमें से काकासर का वृत्तांत एक है। यह विश्वास दिलाने के लिए कि मैं ही रामदूतन् (राम का दूत) हूँ, हनुमान ने सीताजी को यह बात बताई।

राजकवि कुलशेखराल्वार ने भी अपनी रचनाओं में राम की प्रशंसा की। उनके लिए राम सर्वस्व हैं। राम की लीलाओं का वर्णन करते हुए उन्होंने दस पाशुरमों में एक सुन्दर लोरी की रचना की। राम के वन–गमन–विषय के ज्ञाता दशरथ के संताप का वर्णन दस पाशुरमों में किया। कुलशेखराल्वारकृत रामकथा-संबंधी विषयों को संक्षेप-रामायण के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

विप्रनारायण के नाम से प्रसिद्ध तोंडरडिप्पोडि आल्वार (भक्तांध्रि-पादरेणु) ने एक पाशुरम में सेतु-निर्माण में राम की सहायता करनेवाली गिलहरी की कथा का वर्णन किया। यह अवाल्मीकीय वृत्तांत कंब रामायण में भी नहीं है।

रामचन्द्र के वात्सल्य-भाव की स्तुति करते हुए तिरुमंगै आल्वार नामक एक और भक्त कवि ने एक पाशुरम् की रचना की। उसमें तिरुमंगै आल्वार ने बताया कि राम ने गुह को अपने भाई के रूप में तथा सीताजी और लक्ष्मण को क्रमशः गुह के भाभी और अनुज के रूप में संबोधित किया।

जाति से सम्बन्धित गुह में राम-द्वारा प्रदर्शित यह भ्रातृ-भाव अत्यंत स्मरणीय है। सुप्रसिद्ध पंडित-अनुसंधाता श्री टी० पी० मीनाक्षीसुन्दरम् ने बताया है कि यह विश्वानवप्रेम ही कंब कवि के रामायण का प्राण तत्व बन गया।

१२वीं शताब्दी में जीवित पेरियवाच्चान् पिल्लै नामक वैष्णव आचार्य ने "पाशुरप्पडि रामायणं" नामक एक लघु कृति का संकलन किया। द्रविड

वेद कहलानेवाला "नालायिर दिव्य प्रबंध" उन्हें कण्ठस्थ है, अतः उस ग्रंथ के समासों से ही उन्होंने 'पाशुरप्पडि रामायणं' की रचना की। यही इस रचना की विशिष्टता है।

नायन्मारों (शिवभक्त) में तिरुज्ञान सबंधर, तिरुनावुक्करशर् प्रभृति ने रावण के कार्यों का वर्णन किया।

इस प्रकार तमिल साहित्य में महाकवि कंब के पूर्व रामकथा-संबंधी विषय ही हमें दृष्टिगोचर होते हैं। इनके अतिरिक्त कोई समग्र रामायण कंब कवि के पूर्व उपलब्ध नहीं है।

देशी भाषाओं में उपलब्ध रामायणों में महाकवि कंब कृत रामावतार के नामांतर से युक्त रामायण प्रथम है। कितने ही अवाल्मीकीय विषय इसमें वर्णित हैं। यद्यपि संस्कृत में वाल्मीकि, वशिष्ठ, बोधायन प्रभृति ने रामायण का निर्माण किया तथापि कंब का यह कथन द्रष्टव्य है कि मैंने वाल्मीकि की कृति के आधार पर तमिल में रामायण की रचना की। उनके मन में वाल्मीकि के प्रति अनन्य आदर का भाव है। कंब ने बताया है कि मेरा रामायण-रचना प्रयास क्षीर-सागर को पी जाने की इच्छुक बिल्ली की आशा के समान है। यद्यपि उन्होंने इस प्रकार सविनय बताया, फिर भी कुछ तमिल-विद्वानों का मत है कि वाल्मीकि के रामायण से भी कंब-रामायण श्रेष्ठ है। इस दिशा में श्री वी० वी० एस० अय्यर के निम्न शब्द उल्लेखनीय हैं—

"In the Ramayana of Kamban, the world possesses an epic which can challenge comparison not merely with Iliad and the Aeneid, the Paradise lost and the Mahabharata. but with its original itself, namely, the Ramayana of Valmiki." [1]

कवि-सम्राट् की उपाधि से विभूषित कंब ने षट् कांडों की ही रचना की। वाणिदादन् नामक कवि ने उत्तरकांड की रचना की। परन्तु कुछ लोगों की भावना है कि वह ओट्टक्कूत्तर् नामक कवि-वतंस की रचना है।

१८ वीं शताब्दी में वर्तमान अरुणाचल कवि ने रामकथा की रचना कीर्तनों के रूप में की। इस ग्रंथ का नाम " रामायण कीर्तनै " है। यह गेयता से पूर्ण साहित्यिक मूल्य से युक्त रचना है। अतः आज भी यह प्रचार में

1. "Kamba Ramayana–A Study" (1965–A.D.), P. I.

है। १६ वीं शताब्दी में जीवित भक्तकवि रामलिंगस्वामी ने अपने "तिरु अरुट्पा" में राम-नाम के माहात्म्य के बारे में वर्णन किया।

आधुनिकों में कोट्टैयूर सुब्रह्मण्य अय्यर ने ९३७९ पद्यों में "रामायण वेण्बा" की रचना की। यह समग्र रामायण है। इनके अतिरिक्त अनेकों ने रामकथा-संबंधी लघुकृतियों की रचना की। नटेश शास्त्री, सी० आर० श्रीनिवासय्यंगार, ताताचारियार् प्रभृति ने समग्र वाल्मीकि-रामायण अथवा उसके कुछ अंशों को तमिल में रूपांतरित किया। कुछ कवियों ने उत्तरकांड की रचना भी की। अध्यात्मरामायण आदि भी तमिल में रूपांतरित किये गये। वीरै आलवंदार नामक कवि ने २०५५ पद्यों में 'ज्ञानवाशिष्ठ अमल रामायण" की रचना की।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अति प्राचीन संगयुग से लेकर आज तक रामकथा तमिल लेखकों एवं पाठकों को आकर्षित करती आ रही है। यह भी कहा जा सकता है कि तमिल-रामकथा वाङ्मय के लिए कंब कविकृत रामायण शिरोमणि है।

– अनुवादः वै. नागेश्वर राव

''कम्ब रामायण''–एक अध्ययन

– डॉ० चन्द्रकान्त मुदालियार

कम्बर (जीवन-वृत्त)

तमिष़ भाषा के महान् कवियों में कम्बर की गणना की जाती है। विद्वानों का विचार है कि तमिष़ भाषा का माधुर्य एवं काव्य–सौन्दर्य की एक उच्चता का एक मात्र उदाहरण कवि–चक्रवर्ती कम्बर का 'इरामावतारम्' नामक काव्य है। कम्बर ने रचना का नाम 'रामायण' न रखकर 'इरामा–वतारम्' ही रखा है। भारत की सर्वश्रेष्ठ तीन रामायण वाल्मीकि, तुलसी तथा कम्ब रामायण में कम्ब रामायण का अपना विशिष्ट स्थान है। कविपुंगव वाल्मीकि की रामायण संस्कृत भाषा में रचित वर्णन प्रधान महाकाव्य है। इसमें श्रीराम का कवि ने महाकाव्य के उदात्त नायक के रूप में वर्णन किया। उसमें भक्ति तत्त्व का अभाव है। गोस्वामी तुलसीदास की रामायण हिन्दी भाषा में है। भाषा–सरलता के कारण यह उत्तर भारत की सर्व सामान्य जनता का दैनंदिन का पाठ्यग्रंथ बना हुआ है। इसमें काव्य–सौन्दर्य की अपेक्षा भक्ति तत्त्व ही प्रचुर मात्रा में है। तुलसीदास जी की रामायण को काव्य कहने की अपेक्षा धर्मशास्त्र या भक्तिशास्त्र कहना अधिक उपयुक्त होगा। कम्बर की रामायण सरस महाकाव्य है। इसमें कल्पना की उड़ान है। साथ ही प्रत्येक पंक्ति में भगवद्भक्ति कूट–कूट कर भरी हुई है। इन विशिष्ट गुणों के कारण कम्बरामायण ने साहित्य एवं धर्म दोनों क्षेत्रों में महनीय स्थान प्राप्त किया है।

तमिष़ प्रदेश के इस महान कवि के जीवन के बारे में प्रामाणिक एवं विस्तृत परिचय अभी तक नहीं मिला है। कम्बरामायण के अंतरंग प्रमाणों से इतना अवश्य जाना जाता है कि कम्बर का जन्म तंजाऊर जिले के तिरुवेष़्न्दूर नामक ग्राम में 'उवच्चर कुल' में हुआ। उनके पिता का नाम आदित्तन है। उनके पिता एकान्त शिवभक्त थे। कम्बर के बारे में विद्वानों का विचार है

कि वे परम भागवत एवं वैष्णव थे। कविचक्रवर्ती को तमिष् वैष्णव जनता 'कम्बाषवार' ('कम्बनाट्टाषवार') के नाम से याद करती है।

इस कवि के बारे में चार बातें निर्विवादरूपेण विद्वानों ने अंगीकार की है। (१) कम्बर नामक महाकवि तमिष प्रदेश में थे। (२) वे चोष मण्डल में तिरुवेषुन्दूर में थे। (३) उन्होंने 'इरामावतारम्' नामक महाकाव्य लिखा और (४) कम्बर तिरुवेण्णैनल्लूर के दानी सडैयप्पर के आश्रय में रहते थे। इन चार बातों के अतिरिक्त कम्बर के बारे में अनेक कहानियाँ और दन्त परम्परायें प्रचलित हैं। कम्बर के काल में ही संस्कृत को देव भाषा पद प्राप्त हो चुका था। कम्बर ने स्वयं एक पद्य में संस्कृत को एक भाषा कहकर वाल्मीकि रामायण के आधार पर अपनी रामायण के रचे जाने का उल्लेख किया है। कम्बर से पूर्व वाल्मीकि रामायण, व्यासरामायण और अगस्त्य रामायश वर्तमान थीं। कम्बर ने वाल्मीकि रामायण के आधार पर ही कुछ परिवर्तन एवं परिवर्द्धन के साथ 'इरामावातारम्' लिखा है।

कम्बर का काल :–

कवि चक्रवर्ती कम्बर का काल कुछ वर्ष तक विवादास्पद रहा। कम्बर के कालनिर्णय में सहायक अनेक अतरंग एवं बहिरंग प्रमाण प्राप्त हुए हैं। ई० १३७६ सन् के एक कन्नड़ शिलालेख (एपिग्राफिया कर्नाटका, भाग ५, हास्सान ७७) में उस शिलालेख काल की दो पीढ़ियों से पूर्व ही कम्बरामायण का प्रचार कर्नाटक देश में होने का उल्लेख है। इससे यह स्पष्ट है कि ई० १३२५ सन् में कम्बर का 'इरामावतारम्' कर्नाटक प्रदेश में सुप्रसिद्ध था। पेरिय तिरुमोषि के 'मुच्चुळाच्चो कै' नामक पासुर (दशक) व्याख्यान 'ईक्कळ् वण्डोडुमेय्य' (बाल काण्डन्नदी वर्णन का प्रसंग) इस अंश का उद्धरण देकर श्री पेरियवाच्चान पिळ्ळै (जन्म ई० १२२८ सन्) ने की है। अतः कम्बरका काल पेरियवाच्चान पिळ्ळै से पूर्व का काल निश्चित होता है। तमिष नालवर चरित' में कम्बर के बारे में यह उल्लेख है कि चोष राजा से मतभेद हो जाने पर कम्बर ने आंध्र प्रदेश के वारंगल नामक स्थान में जाकर वहाँ के राजा प्रतापरुद्र की प्रशंसा में कविता बनायी। कम्बर ने अपनी रामायण में सचरतम्'(मृग मरीचिका), 'तम्मि' (कमल,) किच्चू (आग) आदि तेलुगु भाषा के पदों का प्रयोग किया है। अतः कम्बर अवश्य ही कुछ काल पर्यन्त प्रतापरुद्र के आश्रम में (वरंगल) में रहे होंगे। उनका काल ई० ११६२–११७९ है। इससे यह

जाना जाता है कि कम्बर बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अवश्य ही रहे होंगे। इस निर्णय को दृढ करने वाला एक पद्य कम्ब रामायण में है जिसमें चोषराजा तृतीय कुलोत्तुंगन् (११७८–१२१०) के लिए 'त्याग विनोदन्' नामक विशिष्ट उपाधि का प्रयोग किया गया है। कम्बर के 'इरामवतारम्' में चोष राजा के उल्लेख होने से लगभग उसी काल में कम्बरामायण की रचना हुई होगी। श्रीमान् वैयापुरी पिळ्ळै ने गूढ़ अनुसंधान कर 'इरामावतारम्' का रचनाकाल ई० ११७८ और गद्यारोहण काल सन् ११८५ माना है।[1]

जनता के कवि-चक्रवर्ती-कम्बर :–

तमिष् प्रदेश के कवियों में तीन ही कवि, कवि-चक्रवर्ती की उपाधि से विभूषित हो सके हैं। (१) कलिंगत्तुप्परणि के रचयिता–जयंकोण्डार(२)ओट्ट-क्कूत्तर तथा (३) कम्बर हैं। जयंकोण्डार और ओट्टक्कूत्तर ये दोनों कवि चोष् राज्य के साथ निकटतया संबन्धित थे। इन कवियों ने इन राजाओं का गुणगान करने में अपनी प्रतिभा का पूरा पूरा प्रयोग किया है। अतः चोष् राजाओं ने इन दरबारी कवियों को कविचक्रवर्ती की उपाधि से विभूषित किया था। मगर चोष् राजा या राज्य से कम्बर के संबन्धित होने का कोई प्रमाण अब तक नहीं उपलब्ध हो सका। कम्बर जनता के कवि थे। इसके विपरीत वे चोष् राजा का कोप–भाजन होकर आंध्र प्रदेश (वरंगल) चले गये थे। यह भी कहा जाता है कि कम्बर की मृत्यु किसी राजा के कारण ही हुई। इस दयनीय परिस्थिति में कम्बर को कविचक्रवर्ती की उपाधि राजा के द्वारा प्राप्त होना संभव नहीं है।

सहृदय विद्वान एवं भावुक भक्तों ने रामायण के भक्तिरस से प्रभावित होकर कम्बर के प्रति सम्मान एवं श्रद्धा अभिव्यक्त करने के लिए उन्हें 'कविचक्रवर्ती' कहा होगा।

लगभग ८०० वर्ष पूर्व कम्बर को विभूषित कविचक्रवर्ती उपाधि आज तक कम्बर के साथ संपृक्त है।

आज 'कवि चक्रवर्ती' की गौरवपूर्ण उपाधि के एक अधिकारी कम्बर ही समझे जाते हैं।

---

१. श्री वैयापुरी पिळ्ळै–'कम्बन् कावियम्'–पृ. सं. ६

कम्बर की महत्ता

तमिष् भाषा में एक कहावत अनेक शताब्दियों से विद्वानों में प्रचलित है।[1] इस कहावत में 'कति' पद का प्रयोग किया गया है। विद्वान् 'क' से 'कम्बर' तथा 'ति' से 'तिरुवळ्ळुवर्' का अर्थ ग्रहण करते हैं। इस प्रकार की व्याख्या से विद्वानों का आशय यह है कि तमिष् भाषा के सर्व महान् कवि कम्बर और तिरुवळ्ळुवर हैं। तमिष् भाषा की सर्वश्रेष्ठ रचना रामायण और तिरुक्कुरळ हैं। कम्बर ने रामकथा द्वारा भक्ति की व्याख्या कर मुक्ति का मार्ग दर्शाया।

कम्बर महाकवि हैं और उनकी रचना को महाकाव्य कहने में किसी को आक्षेप नहीं है। कम्बर की रामायण में सात काण्ड और १२०६७ पद्य हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार 'कम्बर ने बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किंधाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड और युद्धकाण्ड आदि ६ काण्डों की रचना की। उत्तरकाण्ड (सातवाँ काण्ड) कम्बर की रचना नहीं है।

कम्बर की रामायण तमिष् भाषा की अमर रचना समझी जाती है। कम्बर से पूर्व भी अनेक रामायणें थीं। कम्बर की काव्य-प्रतिभा, वचन-विन्यास एवं रचना-शैली के समक्ष पूर्ववर्ती कवियों की रामायण हतप्रभा होकर काल से कवलित हो गयी हैं। कम्बर की इसी गरिमा के कारण नवम शतक से लेकर चौदहवें शतक तक को वृहत् काव्यकाल के नाम से माना जाने लगा।

कम्बरामायण की प्रशंसा में किसी कवि का एक पद्य बहुत समय से प्रचलित है। सांसारिक सकल भोगों के केन्द्रभूत राजा का पद या उससे भी समुन्नत इन्द्रपद से जो विपुल सुखसामग्री प्राप्त होगी उससे कई गुना अधिक सुख कम्बरामायण महाकाव्य के अध्ययन से प्राप्त होगा।

कम्बर का रचना-वैचित्र्य

कम्बरामायण में रामकथा अयोध्या काण्ड से आरम्भ होती है। रामायण का प्रारम्भ बालकाण्ड से होने पर भी उसमें वर्णन की प्रधानता है, कथा का अंश नहीं के बराबर है। रामायण की मुख्य घटना रावणवध है। सीता रावण का अरण्य में मिलना ही रावणवध का बीज है। राम के साथ का वनगमन न होता तो रावण वध संभव नहीं था। अतः रामायण के मूल

---

१. 'तमिषुक्कु कति इरुवर'।

में सीता वनगमन ही मुख्य अंश है। अयोध्या काण्ड से कथा प्रारम्भ होकर रामायण की समाप्ति पर्यन्त रामकथा तीव्रगति से चलती है। घटनामय कथा का वर्णनात्मक प्रारम्भ बालकाण्ड है। रामायण को पढ़कर रसानुभूति करने से पूर्व पाठकों का मन बालकाण्ड के नदी, कोसलराज्य अयोध्या, नगर, रामावतार, ताटका वध, अहल्या उद्धार, मिथिला गमन, राम का धनुष-नमन, सीता स्वयंवर और अयोध्या वापस आते समय परशुराम से संघर्ष आदि के विस्तृत वर्णन में रम जाता है। इस काण्ड में श्रीराम का जन्म और जानकी-परिणय का वर्णन आस्वाद्य विषय है। इन्हीं दो मुख्य घटनाओं के वर्णन में महाकवि कम्बर ने १४०० वृत्तों (चतुष्पदी) में किया है। बालकाण्ड के विस्तार के लिए नगर वर्णन, पर्वत वर्णन, नदी वर्णन, राजकुमारों का भ्रमण आदि का अत्यन्त नैसर्गिक रूप में वर्णनीय विषयों को बहुत ही रमणीय बनाया है। विश्वामित्र संबंधी कथा को लेकर कवि बालकाण्ड को बढ़ाता है। समस्त रामायण का आद्योपान्त अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि बालकाण्ड का विस्तार रामायण की पूर्णता के लिए इतना आवश्यक नहीं है। महाकाव्य के लक्षण की पूर्ति के लिए नदी, पर्वत आदि का वर्णन अपेक्षित होने से ही कवि ने भूमिका के रूप में बालकाण्ड का विस्तार किया है।

कवि वाल्मीकि के अनुसार कवि कम्बर का भी मुख्य लक्ष्य रावणवध ही है। कम्बर ने इस मुख्य लक्ष्य का ध्यान काव्य में सर्वत्र रखा है। अयोध्या काण्ड के प्रारंभ में राजा दशरथ अपने ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र जी का राज्याभिषेक करना चाहते हैं। इस विषय में वे अनुभवी मन्त्रियों से विचार-विनिमय करते हैं। मन्त्रीगण राम-राज्याभिषेक का, हृदय से स्वागत करते हैं और उत्साह के साथ दशरथ के इस विचार का समर्थन करते हैं। पाठकों को यही प्रतीत होता है कि बिना किसी बाधा के राम-राज्याभिषेक हो जायगा। कैकेयी राम से अत्यधिक स्नेह रखनेवाली माता है। राम को भी कौसल्या माता से बढ़कर कैकेयी माता के प्रति अधिक मातृ प्रेम और श्रद्धा थी। किन्तु राम-राज्याभिषेक के समाचार से कैकेयी व्यथित है। इस आश्चर्यजनक विचार-परिवर्तन के मूल में कैकेयी की मंथरा नामक पार्श्ववर्तिनी सेविका है। राम-वनगमन, सीता-पहरण, रावण-वध, सुग्रीव और विभीषण की राज्य प्राप्ति के मूल में मंथरा की मन्त्रणा ही मूल कारण है। राम और सीता के प्रति श्रद्धा रखने वालों को कुब्जा मन्थरा के प्रति क्रोध और घृणा होना मानव की नैसर्गिक कमजोरी के कारण बुरा नहीं है। कम्बर ने मन्थरा का चित्रण भी सहानुभूति के साथ किया और उसे आक्षेप से बचाने के लिए विधि को बलवान बना दिया। देवताओं

की माया, उनके पाये गये वर, धार्मिक ब्राह्मणों की तपश्चर्या और राक्षसों के पाप निवारणार्थ ही कैकेयी का मन बदला है। इस प्रकार वर्णन कर मंथरा और कैकेयी दोनों को ही पाप या निन्दा से मुक्त कर दिया।

कैकेयी की इच्छा पर राम को जंगल में जाना पड़ता है। केवल राम के जंगल में जाने पर रावण-वध संभव नहीं है। अतः सीता के वनगमन की परिस्थिति उत्पन्न होती है। लंकेश्वर रावण के प्रतापी पुत्र इन्द्रजीत के वध के निमित्त लक्ष्मण का राम के साथ वन जाना आवश्यक है। वाल्मीकि के अनुसार राम के समान लक्ष्मण भी कैकेयी की कठोर बातों को सुनता है। कम्बर ने कैकेयी के समक्ष राम को ही खड़ा किया। रामचन्द्र के राज्याभिषेक का निषेध और वनगमन का आदेश बहुत समय के बाद ही लक्ष्मण को ज्ञात हुआ। 'कवि कम्बर ने इस प्रसंग में लक्ष्मण के मुंह से बहुत ही नाटकीय ढंग से बातें कहलायीं–कैकेयी ने अपने प्राप्त वर के कारण राम से जंगल में जाने को कहा-यह सौतेली माँ की लगायी आग है" यह कहकर लक्ष्मण नाटकीय भाव से हट जाता है। सारी कम्बरामायण की रचना नाटकीय ढंग पर है अतः कम्बरामायण "काव्यात्मक नाटक" समझा जाता है। राम का आगमन, ककेयी की आज्ञा, राम का संक्षिप्त उत्तर एवं कैकेयी से सद्यः बिदा होना; कौशल्या माँ के पास जाना, आदि घटनायें तीव्रगति से चलती हैं। पाठकों को ये घटनायें प्रत्यक्ष भयमान दृश्य के सदृश प्रतीत होती हैं।

रामचन्द्र जी दशरथ-पत्नियों (अपनी माताओं) से वन-गमनार्थ बिदा ले रहे हैं। उस समय की करुणाजनक स्थिति हृदय को विदीर्ण करती है। कम्बर की वर्णनशैली पाषाण हृदय को भी द्रवीभूत कर सकती है। पाठकों के चित्त पर इस वर्णन का सद्यः प्रभाव पड़ता है। माताओं ने राम-लक्ष्मण की आज्ञाकारिता की प्रशंसा की और वधू सीता को आशीर्वाद दिया। लक्ष्मण की भ्रातृ स्नेहशीलता की, मुक्त कण्ठ से तारीफ हुई। वनगमन करने वालों की रक्षा के निमित्त देवताओं से प्रार्थना कर मातायें शोक से विह्वल हो गयीं। वाल्मीकि ने राम-वन-गमन का वर्णन व्यास-शैली में किया जब कि कम्बर ने उसे समास-शैली में उपस्थित किया।

कम्बर के वनगमन-वर्णन में तीव्रता है। भारत की सभी रामायणों में अरण्यकाण्ड ही रामायण का मध्य भाग है। इसी काण्ड में राम और रावण विरोध के कारणभूत सीताहरण की घटना होती हैं। अतः अरण्यकाण्ड शेष काण्डों की अपेक्षा अधिक महत्त्व रखता है। 'कम्बर ने इस काण्ड की रचना

अतीव सुन्दरता से की है। इस काण्ड में कवि ने कथा में कहीं कहीं परिवर्तन भी किया है। पंचवटी में सीता, राम तथा लक्ष्मण निवास कर रहे हैं। रावण की बहन शूर्पणखा का आगमन पंचवटी में होता है। रामचन्द्र के रूप-लावण्य को देखते ही शूर्पणखा मुग्ध हो जाती है। राम को पाने की अभिलाषा से वह अपने निशाचर रूप का परित्याग कर देव-कन्या का रूप धारण कर जगन्मोहिनी होकर रामचन्द्र के संमुख उपस्थित होती है। इस अंश का वर्णन वाल्मीकि रामायण में अन्य प्रकार का है। वाल्मीकि के अनुसार रामचन्द्र जी, सीता और लक्ष्मण के साथ बैठकर ऋषियों से कथा-श्रवण कर रहे थे। उस समय शूर्पणखा लोहित केश, रक्तनेत्र, दृढ़ गात्रवती एवं आभरणों से समलंकृत होकर रामचन्द्र जी के पास आयी और उनसे सपत्नीक वनागमन का कारण पूछती है। कवि ने शूर्पणखा की कामातुरता की जिज्ञासा अभिव्यक्त की। कम्बर ने शूर्पणखा का रामचन्द्र जी से मिलन एकान्त में कराया। जगन्मोहन शरीर धारण कर नूपुर मेखला आदि सर्वाभरणों से सुसज्जित शूर्पणखा राम को एकान्त में देखकर कुछ कहना चाहती है। शूर्पणखा की सुषमा देखकर रामचन्द्रजी विस्मित होकर सोचते कि क्या सौन्दर्य की कभी सीमा हो सकती है? शूर्पणखा से रामचन्द्र जी उसके आगमन का कारण पूछते हैं। दोनों का वार्तालाप अतीव सरस एवं स्वाभाविक है। इसी बीच तन्वी सीता भी राम के पास आ जाती है। शूर्पणखा का स्वरूप एवं उसकी हार्दिक इच्छा से परिचित होने पर रामचन्द्र जी सदर्प होकर अपना परिचय विवाहित व्यक्ति के रूप में देते हैं। इससे शूर्पणखा निराश एवं व्यथित होती है। अन्त में राम शूर्पणखा को लक्ष्मण की ओर इशारा कर उसके पास भेज देते हैं। वाल्मीकि रामायण के अनुसार राम की आज्ञा से लक्ष्मण ने शूर्पणखा का (अरण्य काण्ड १८-२०-२१) अंगभंग किया। इस दृश्य का कम्बर ने परिवर्तन कर राक्षसों के मायाजाल और रामचन्द्र जी के औदार्य का चित्रण किया है। कम्बर के अनुसार लक्ष्मण के द्वारा किये गये अंगभंग के समय राम संध्यावंदन में थे। शूर्पणखा के अंगभंग में राम की प्रेरणा नहीं है। शूर्पणखा के अंगभंग में राम का संबन्ध दिखाने पर उन पर नारीजन-तिरस्कार एवं अकारुण्य का आक्षेप हो सकता है। इस दोष से मुक्त करने के लिए कम्बर ने कथा में परिवर्तन किया है। अंगभंग होने पर शूर्पणखा अपने भाई रावण के पास जाकर राम की निन्दा करती है और सीताहरण की प्रेरणा भरती है। कम्बर के अनुसार शूर्पणखा रावण के पैरों पर गिरकर रोती है। शूर्पणखा की दशा देखकर रावण के अधर फड़कते हैं, नेत्र लाल हो जाते

हैं, क्रोधोन्मत्त रावण को देखकर सूर्य भयभीत हो गया। देवगण पलायन कर छिप रहे हैं। रावण अत्यन्त क्रोधित होकर अंगभंग करने वालों के बारे में शूर्पणखा से पूछता है। उस दिशा में शूर्पणखा का राम, लक्ष्मण तथा सीता के सौन्दर्य का वर्णन करना स्वभाविक प्रतीत होता है। शूर्पणखा के इस समय के वर्णन से रावण क्रोधावस्था से कामुकावस्था को प्राप्त हो जाता है। वह खर तथा दूषण की मृत्यु-समाचार को भूल गया। अपनी विजय और पराजय को भूल गया। रावण कामदेव के पुष्पवाणों से विद्ध होकर जानकी मात्र का स्मरण करने लगा। कम्बर ने रावण की कामातुरता का ८० पद्यों में वर्णन किया है। काम का इतना विस्तृत वर्णन अति प्रतीत होने पर भी काम, क्रोधादि विषयवासना के कारण महान् अनर्थकारी अघटित घटनायें होती हैं।[1] इस सत्य को निरूपित करने के लिए रावण के काम का वर्णन आवश्यक प्रतीत होता है।

मायावीमृग से आकृष्ट होकर राम ने उसका अनसरण किया। सुवर्णमृग के मायाजाल के कारण लक्ष्मण को भी राम के सहायतार्थ जाना पड़ा। राम, लक्ष्मण की अनुपस्थिति में रावण ने आकर सीता का अपहरण किया। इस घटना का वर्णन वाल्मीकि और कम्बर दोनों ने अपने–अपने ढंग से किया है।[2] वाल्मीकि के वर्णन के अनुसार रावण वामकर से सीता के मस्तक और दक्षिण से सीता की जंघा को पकड़कर उठा ले गया, सीता जनकतनया होने पर भी जगन्जननी एवं लोकमाता के रूप में पूजित है। सीता का पातिव्रत्य लोक विदित है। शील और पातिव्रत्य की मूर्तिमती सीता का स्पर्श कर रावण उठा ले गया। यह वर्णन श्रद्धालु, भावुक भक्त को रुचिकर नहीं होगा। अतः कवि कम्बर ने इस घटना का वर्णन सीता के पातिव्रत्य के अनुरूप किया है। वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में रावण की कामुकता

---

१. ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूयते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥ भग. अ २ श्लोक ६२-६३

२. जग्राह रावणः सीतां वुध रवे रोहिणीमिव।
वामेन सीतां पद्माक्षीं मूर्धजेषु करेण स।
ऊर्ध्वोस्तुर्दाक्षणेनैव परिजग्राह पाणिना। वा. रा अयो. का. ४९–१७–१८

और शाप का वर्णन है। वेदवती नामक तेजस्विनी देवकन्याओं की मातायें, रम्भा, मूलकूबर और ब्रह्मा आदि ने रावण को शाप दिया कि "यदि तुम्हें न चाहने वाली कन्याओं का स्पर्श यदि तुम करोगे तो तुम्हारा मस्तक फटकर तुम नाश को प्राप्त होगे।" इस शाप के भय से रावण के सीता को पर्णशाला सहित उठा ले जाने का कम्बर ने वर्णन किया है। कैलाश जैसे पर्वत को उठाने का साहस करने वाले रावण का पर्णशाला सहित सीता को उठाना अस्वाभाविक नहीं है। तमिष् प्रदेश के पातिव्रत्य का स्तर बहुत ऊँचा है। तमिष् पातिव्रत्य की कहानी जानने के लिए 'शिलप्पदिकारम्' (इळगोकृत) और मणिमेखलै (चीत्तलैच्चात्तनार कृत) काव्य का अध्ययन उपयोगी है।

कम्बर ने वाल्मीकि रामायण के आधार पर ही तमिष्-काव्य शैली एवं आदर्श के प्रतिपादन के निमित्त कथा में परिवर्तन कर 'इरामावतारम्' की रचना की।

रामायण वैष्णव भक्ति-काव्य

कम्बर के काल में जैन और बौद्धों का धार्मिक आधिक्य समाप्त हो गया था। किन्तु शैव और वैष्णवों में कुछ कुछ स्पर्धा हो रही थी। कम्बर की रामकथा से तमिष् जनता आकृष्ट होकर कम्बरामायण पढ़ने लगी। शैव जनता की शिवभक्ति में अटल श्रद्धा रखने वाले कम्बरामायण के अनुरूप "कन्दपुराणम्" (स्कन्ध पुराण के आधार पर) की रचना हुई। कन्द पुराण का आकार भी कम्बरामायण के समान है। इसमें लगभग १०,३०० पद्य ह। इस पुराण के लेखक (काञ्चीपुरम् के) कच्चियप्प शिवाचार्य थे। शैवों के प्रयास से निर्मित कन्द पुराण के निर्माण और प्रचार से भी कम्बरामायण का गौरव कभी नहीं घटा। कम्बरामायण से पूर्व जैनधर्मावलंबी तिरुक्कदेव ने चिन्तामणि नामक महाकाव्य लिखा था। उस काव्य का प्रयोजन जैन धर्म के तत्त्वों की व्याख्या करना था। शैव जनता उस काव्य से भी आकृष्ट हुई। तभी शेक्किषार ने 'पेरियपुराणम्' लिखकर शैव जनता को जैन धर्म के प्रभाव से बचाया। शेक्किषार पुराण में ६३ शैव सन्तों के जीवन का उल्लेख है। इसका विश्लेषण अन्यत्र कर दिया गया है। जैन और शैवों के प्रयास से अनेक काव्यों के निर्माण करने पर भी कम्बर के काव्य की महत्ता न घटने का कारण काव्य की दैवी महत्ता, पवित्रता धार्मिकता, नैतिकता, त्याग और कर्त्तव्य-शीलता आदि का चित्रण है।

कम्बर कालीन किसी अज्ञात कवि ने एक पद्य में इस प्रकार कहा है– लंकेश्वर रावण के नाशक पराक्रमी श्री रामचन्द्र की कथा के किसी अंश के पठन, पाठन या श्रवण करने से पापों का शमन होता है। कवि तत्कालीन समाज का प्रतिनिधि है। इस प्रकार का उन्नत एव भक्तिपूर्ण विस्तार कम्बर–कालीन जनता के हृदय पटल में अंकित था। उनमें कम्बर की रचना का एकमात्र लक्ष्य वाल्मीकि के महामानव 'दाशरथिराम' को पुरुषोत्तम या पूर्ण पुरुष के रूप में प्रतिपादन कर उन्हें जनता का उपास्यदेव बनाना था। इसी लक्ष्य के लिए कम्बर ने राम को जहाँ नारायण बनाया, सीता को भी वहाँ लक्ष्मी बनाया। बालकाण्ड में वाल्मीकि के प्रश्न और नारद ऋषि के उत्तर से राम उदात्त काव्य नायक प्रतीत होते हैं। कम्बर ने काव्य नायक दाशरथि राम को लोकनायक, लोक शरण्य एवं परमात्मा के रूप में परिवर्तित किया है। इस परिवर्तन का मूलकारण चतुर्थ या पञ्चम शतक का प्रारंभिक भक्ति प्रवाह है। धार्मिक भक्ति काव्य होने पर भी लौकिक काव्य विषयक सरसता और ऐतिहासिकता की कमी इसमें नहीं है।

कम्बर के तमिष्–समाज की कल्पना

कम्बर ने कुछ पद्यों में कोसल देश और अयोध्या नगर का वर्णन किया है। उनके वर्णन से प्रतीत होता है कि कम्बर ने तमिष् समाज के भविष्य के रूप की कल्पना की है। बालकाण्ड के नगर-वर्णन पटल (सर्ग-पद्य) ५३) में कम्बर ने व्याज निन्दा से कोसल राज्य की स्तुति की है। "कोसल देश में कोई दान नहीं करता था (दान देने वाले ही कोई न थे) वहाँ लोग वीरता की बातें नहीं करते थे (दुश्मन न होने से लड़ाई नहीं होती थी), लोग सत्य की प्रशंसा नहीं करते थे। (कोई झूठ बोलना नहीं जानता था) और कोसल देश में ज्ञान का विशेष मूल्य नहीं था (सभी ज्ञानी थे, कोई अज्ञानी नहीं था) कोसल देश में चोर या डाकू नहीं थे, अतः कोई संपत्ति की रक्षा ताला लगाकर नहीं करते थे। वहाँ कोई भीख नहीं मांगता था। अतः भीख देने वाला भी नहीं था। बालकाण्ड के नगर पटल (सर्ग) के एक पद्य (७४) में अयोध्या की महिमा का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है–नगर में सभी सुशिक्षित थे। सभी सर्व साधन संपन्न थे। कोई भी वहाँ आवश्यकता और अभावों से पीड़ित न था। धनी और गरीब या ऊँच और नीच का भेद अयोध्या नगर में नहीं था। इसी आशय को लेकर उत्तरकालीन (आधुनिक) राष्ट्र कवि सुब्रह्मण्य भारती ने एक पद्य में कहा है जिसका पद्यानुवाद इस प्रकार है —

"न कोई धनिक न निर्धन है, न स्वामी न सेवक है ।
जाति भेद का भेदभाव नहीं है, सभी समान है भारत में ।।
शिक्षा पाकर, संपद् पाकर, हम भी होंगे सुखी यहाँ ।
सभी मनुष्य एक समान, समत्व के हम अनुयायी ।।

कम्बर का समरस भाव

कम्बर के काल में धार्मिक संघर्ष समाप्त-प्राय था । जैनों और बौद्धों का आधिक्य और उत्साह समाप्त हो चुका था । केवल शैव और वैष्णवों में थोड़ी बहुत स्पर्धा विद्यमान थी । कम्बर संघकाल के आदर्श से सुपरिचित थे । संघकाल में तिरुमाल (विष्णु) शिव, शिवकुमार (मुरुग), कोट्टवै (काली), कृष्ण, बलदेव, इन्द्र और वरुण आदि की उपासना होती थी । उपासना विषयक इस विभिन्नता के कारण संघकालीन जनता में मनोमालिन्य या विचार भेद का संघर्ष नहीं था । तिरुवळ्ळुवर ने इसी आदर्श का चित्रण अपने काव्य कुरळ' में किया । कम्बर इसी समरस भावना का पुनर्जागरण तमिष् प्रदेश में करना चाहते थे । इसी उच्च लक्ष्य की पूर्ति के निमित्त कम्बर ने तमिष् के साहित्य में सदा उज्ज्वल प्रतीयमान इस समदर्शिता प्रतिपादक काव्य की रचना की ।

"समस्त ससार के सर्जन, पालन, एवं संहार आदि प्रकृति की लीला के रूप में करने वाले ही मेरे उपास्य नायक हैं । मैं उन्हीं की शरणागति हूँ।" यही काव्य का प्रथम पद्य है । इस पद्य में संप्रदाय निरपेक्ष परतत्त्व का ही उपास्य के रूप में प्रतिपादन किया । बालकाण्ड के नदीसर्ग (१९) में कम्बर ने परतत्त्व की व्याख्या इस प्रकार की है– नदी का उद्गम स्थान पर्वत है । पर्वत से निकल कर नदी नाना शाखाओं में बँटकर बहती है । एक ही नदी के नाना रूप में बँट जाने से शाखा नदियों के नाम अनेक हो जाते हैं और ये सभी विभक्त नदियाँ पुन: सागर में बिलीन होकर नाम रूप रहित हो जाती हैं ।[1] उसी प्रकार ईश्वर एक ही है । व्यावहारिक रूप में ईश्वर का नानात्व नज़र आ रहा है। तात्विक रूप में 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' (ऋ०) —सारतत्त्व एक ही है । बालकाण्ड के भ्रमणसर्ग (प० १९) के एक पद्य से कम्बर ने ईश्वरतत्त्व को और भी स्पष्ट किया । यह पद्य कम्बरामायण में बहुत ही प्रसिद्ध पद्य समझा जाता है ।

---

१. अपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठ समुद्रमाप: प्रविशन्ति यद्धत् । गीता–अनु २ श्लो २०।

"तोळ् कण्डार तोळे कण्डार
तोड्ड कषल् कमलम् अन्न
ताळ् कण्डार ताळे कण्डार
तडक्कै कण्डारुम् अक्ते
वाळ्कण्ट कण्णार यारे
वडिविनै युडियक्कण्डार ?
ऊषकण्ड समयत्तु अन्तान्
उरुवु कण्डारै ओत्तार

—(बालकाण्ड–भ्रमणपटलम् पं० १९)

अज्ञान से आविष्ट जीव परमात्मा के समस्त रूप को न देखकर उसके एक देश को देखकर उसी को ईश्वर समझ लेता है। इसी आशय का कथन कम्बर के शब्दों में इस प्रकार है—

श्री रामचन्द्रजी मिथिला नगर के भ्रमणार्थ निकले। उनके सौन्दर्य से जनता आकृष्ट हो गई। रामचन्द्रजी के लावण्य से आकृष्ट होकर जिस-जिस अंगपर लोगों के नेत्र जम गये थे वहीं उनके नेत्र जमे रह गये। लोग जिन अंगों से आकृष्ट हुए थे उन्हीं को राम समझकर मुदित होने लगे। वे रामचन्द्र जी के अन्य अंगो को देख न सके। जिन लोगों ने रामचन्द्रजी के कंधों को देखा था, वे कन्धों की शोभा में लीन हो गये। कुछ और लोग रामचन्द्रजी के मंजुल चरणों के सौन्दर्य में आकृष्ट हो गये थे। अन्य लोग रामचन्द्रजी के आजानुबाहु करों की सुषमा में मन को अर्पण कर निर्निमेष नेत्रों से उनको देखते रहे। श्रीराम के दर्शन से तृप्त होने की इच्छुक अंगनायें उनके चित्ता-कर्षक मनोज्ञ रूप के एक देश के रसास्वादन में डूब गयी थीं। दर्शकों में किसी ने भी रामचन्द्र के समस्त रूप का दर्शन-आस्वादन नहीं किया। इस वर्णन से कम्बर का गूढ़ार्थ यह है कि लोग भगवान के वास्तविक या संपूर्णतत्त्व को न जानकर ईश्वर के आँशिक ज्ञान के अनुभव के आधार पर तर्क या वितण्डावाद करते हैं।

कम्बर के समरसात्मक भक्ति-आदोलन के काल में तमिष भाषा में एक कहावत प्रचलित हुई––"अरियुम् शिवनुम् ओण्णु, अरियादवन् वायिल् मण्णु" अर्थात् "हरि और हर एक अज्ञानी के मुँह में धूल।" कम्बर ने किष्किन्धा

काण्ड नगर त्याग सर्ग के पद्य (२४) में समरस भाव का तीव्र समर्थन करते हुए कहा कि "शिव बड़ा या तीनों लोकों के नापने वाला विष्णु बड़ा" इस प्रकार के विवाद में पड़कर भेद भाव उत्पन्न करने वाले ईश्वर–विरोधी एवं नरकगामी होंगे। कम्बर ने रामायण के किसी भी पद्य में शिव की निन्दा न की। वे विष्णु के समान शिव का भी स्तवन करते हैं। कम्बर के काव्य में धार्मिक विरोध, परमत निन्दा और इतर धर्मों के उपास्य देवों का खण्डन या तिरस्कार नहीं पाया जाता है। कम्बर अपने समय से पूर्व के वळ्ळुवर, नम्माऴ्वार और तिरुत्तक्कत्तेवर से प्रभावित हुए। इसका प्रमाण उनकी रामायण में उपलब्ध है। वैष्णव विद्वानों का विचार है कि कम्बर वैष्णव संप्रदाय के अनुयायी और आऴ्वारों में प्रमुख नम्माऴ्वार के भक्त थे। कम्बर का आश्रय-दाता शडैयप्प मुदलियार नामक उदारचेत शैव थे। कम्बर ने कृतज्ञता प्रकाशनार्थ अपनी कृति को शडैयप्पर को अर्पित किया और काव्य के दस स्थानों में शडैयप्पर का नाम श्रद्धा के साथ लिया है। वैष्णव समझे जाने वाले कम्बर का शैवमत के अनुयायी, शडैयप्पर के साथ पूर्ण स्नेह था। इस स्नेह का कारण कम्बर का समरस भाव है।

कम्बर और अवतारवाद

दक्षिण प्रदेश के 'शैव सिद्धान्त' दर्शन में अवतारवाद की मान्यता नहीं है। श्री वैष्णव सम्प्रदाय में अवतार की महत्ता अंगीकृत है। कम्बर जन्मना शैव होने पर भी स्वयं वैष्णव धर्म के सिद्धान्त से अवश्य ही प्रभावित थे। कम्बर भगवान के अवतारवाद का समर्थन करते हैं। उनके रचित काव्य के नाम 'इरामावतारम्' से भी कम्बर के विचार का ज्ञान होता है। अवतार की महिमा समझाकर कम्बर जनता को भक्ति के द्वारा मुक्तिमार्ग का उपदेश देते हैं। कवि ने सुन्दरकाण्ड में असुरों के वर्णन द्वारा आसुरीय वृत्ति का वर्णन किया है। उन्होंने राक्षसों की निष्करुण, पाषाण हृदय, वञ्चना और अन्य निंदनीय दुष्कृत्यों का वर्णन किया है। राक्षस अपकारवृत्ति को ही अपना कर्त्तव्य मानकर नाशकारी दुष्कृत्यों में लगे हुए थे। दुर्गुणों के भण्डार राक्षसों से साधुजनों के रक्षा–निमित्त परमकरुणामय भगवान् का अवतार आवश्यक है। भारत देश में इस प्रकार के अवतार समय–समय पर होते

है।[1] कृष्णावतार के समान रामावतार भी वेद प्रतिपादित धर्म के संस्थापन एवं साधुजनों के परित्राण के लिए था। श्रीरामचन्द्र जी परोपकार निरत एवं भक्त वत्सल हैं। कम्बर के राम शालीनता एवं उदारता की मूर्ति हैं। उनमें गम्भीरता, धीरता एवं शरणागत वत्सलता आदि गुण प्रचुरमात्रा में है। युद्ध काण्ड (वीडणन् पटलम्—१८) में कम्बर ने राम को धार्मिकों का स्नेह-भाजन कहा। इसी काण्ड में (वी. ५०) राम के शील का वर्णन किया गया हैं। "रामचन्द्र जी धर्म, ज्ञान और तपश्चर्या का आगार हैं, समुन्नत गुण एवं सहनशीलता का भण्डार है और गुण गण मण्डित कृष्ण रूप रामचन्द्र करुणापूर्ण हैं। विभीषण ने राम की करुणा पर विश्वास कर उनके पास जाकर उनके चरणों में प्रणाम किया।" रावण के भाई कुम्भकर्ण ने रामचन्द्र की प्रशंसा युद्धकाण्ड में (कुंभकर्ण सर्ग--८५) इस प्रकार किया है--"श्री रामचन्द्र जी शरणागतों के पालक हैं। हम राक्षस आमूलचूल वञ्चना से पूर्ण और पापाचरण करने वाले हैं। हम मनसा, वाचा, कर्मणा असत्य का आचरण करते है। राक्षस दुष्कृत्य एवं निन्दनीय कृत्यों में प्रवीण हैं। सकल दुर्गुणों से युक्त हम आपदाओं से कैसे बच सकते हैं। धर्म और सत्य की विजय सदा होती है।" युद्ध काण्ड (निकुम्बलै १७१) में विभीषण के मुँह से कम्बर ने धर्म का महत्त्व दर्शाया है। विभीषण कहता है "धर्म के सहारे मैं जीवित रहूँगा, अधर्म का पक्ष (रावण का पक्ष) कभी नहीं ग्रहण करूँगा।" कम्बर ने श्री रामचन्द्र को आदर्श पुत्र, आदर्श भ्राता, आदर्श पति, आदर्श मित्र, त्यागमूर्ति शरणागत वत्सल, एक-पत्नी व्रत के पालक, परदारा को मातृवत् देखने वाले, करुणामय और परोपकारी, निष्कलंक एव शीलवान् के रूप में चित्रित किया है। कम्बर ने कोसल देश की जनता को भी निष्कलंक एवं धार्मिक बताया। बालकाण्ड के देश–वर्णन–सर्ग, पद्य ३९ में कम्बर ने कोसल देश की जनता का आदर्श बताया।" जनता सब प्रकार के दोषों से मुक्त थे, वहाँ जनता का जीवन निष्पाप था। वहाँ यम का भय नहीं था। जनता का हृदय पवित्र था, वे क्रोध नहीं करते थे। वे केवल धर्म का आचरण करते थे।

---

१. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥ भग०

विभीषण–शरणागति की घटना का कम्बर ने बहुत ही सुन्दर एवं सजीव वर्णन किया है। कम्बर ने श्री रामचन्द्र की करुणापरता की स्थापना मनोज्ञ ढग से की है। युद्धकाण्ड (वीडणन् अडैक्कल सर्ग १४४) में विभीषण श्री राम की शरण जाकर "अब मैं बचा", इस प्रकार कहता है। श्री रामचन्द्र जी ने राक्षसपक्षीय विभीषण को करुणापूर्ण नेत्रों से देखा और तुरन्त ही उसे लंका का राजा बनाने का आश्वासन दिया।

कम्बर का भक्ति तत्त्व

कम्बर की काव्य-कुशलता को देखकर उन्हें कविचक्रवर्ती कहने वाली तमिष् जनता उनकी गाढ़-भक्ति को देखकर आषवार कहा करती थी। उनकी रामायण में भक्ति रस के प्रतिपादक पद्य और पटल (सर्ग) अनेक हैं। रामायण का हिरण्यवध पटल कम्बर की भक्ति का सर्वोत्तम प्रसंग समझा जाता है। जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में शिव-पार्वती के प्रसंग की उद्भावना कर राम-भक्ति का निरूपण किया उसी प्रकार कवि कम्बर ने भक्ति की सर्वोत्तमता प्रतिपादनार्थ हिरण्यवध पटल (सर्ग) की सृष्टि की। कम्बरामायण के समस्त पटलों में हिरण्यवध पटल ही अत्यन्त श्रेष्ठ एवं प्रभावजनक समझा जाता है। कालिदास के शकुन्तला नाटक के चतुर्थांक के श्लोक चतुष्टय के समान[1] कम्बरामायण में हिरण्यवध पटल माना जाता है। आलोचकों का विचार है कि यदि किसी कारण कदाचित् कम्बरामायण नष्ट होकर केवल हिरण्यवध पटल मात्र बच जाय तो केवल उसी में कविचक्रवर्ती कम्बनाट्टषवार की महत्ता सदा बनी रहेगी।[2] अन्यत्र कहा गया है कि कम्बर ने वाल्मीकि रामायण की कथा में परिवर्तन और परिवर्द्धन किया। भक्ति तत्त्व को यथार्थ रूपेण समझाने के लिए कम्बर ने रामायण में हिरण्यवध पटल का संयोजन किया है।

नारायण ही त्रिकृत्य के निमित्त ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र होकर सृष्टि, रक्षा और सहार करते हैं। वे ही पृथ्वी लोक, अन्तरिक्ष लोक और आकाश लोक का एक मात्र परतत्त्व और साक्षी रूप हैं। वे सर्व व्यापक होने से

---

१. श्री. कु. बालसुन्दर मुदलियार 'कम्बरसम् आरायूच्चि' पृ. सं. २८

२. काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र चापि शाकुन्तलम्।
तत्र च चतुर्थोऽकंस्तत्र श्लोकश्चतुष्टयम्॥

स्थूलातिस्थूल और सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तु में व्याप्त हैं। वे ही नदी और पर्वत व्याप्त हैं। सामने के खंभों में हैं और तुम्हारी वाणी में हैं। इस सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव तुम्हें अतिशीघ्र हो जायगा।" प्रह्लाद के इस कथन से हिरण्यकशिपु को क्रोध और आश्चर्य एक साथ हुआ। उसने प्रह्लाद को धमकाकर पूछा कि क्या तुम अपने नारायण को सामने के खम्भे में दिखा सकते हो। परम भागवत भक्त एवं ज्ञानी प्रह्लाद ने दृढ़ विश्वास एवं पूर्ण आस्था के साथ कहा कि नारायण यत्र-तत्र-सर्वत्र हैं, वे खम्भे में भी हैं। मेरी दर्शनेच्छा पर नारायण प्रकट न हो तो में स्वयं मृत्यु को प्राप्त करूँगा। और मैं पुनः कभी उनका दास न बनूंगा।

प्रह्लाद के कथन से हिरण्यकशिपु के क्रोध की सीमा नहीं रही। वह क्रोध और अहंकार की मूर्ति था। अभिमानी हिरण्यकशिपु ने हाथ उठाकर पूर्ण बल से सामने के खम्भे को मारा। खम्भा टूटा और नृसिंह रूप में नारायण प्रकट होकर विस्मय के साथ खड़े हो गये। हिरण्यकशिपु का अहंभाव अब भी घटा नहीं। उसने नृसिंह भगवान् को युद्ध करने के लिए बुलाया। भक्त प्रह्लाद ने पिता से अहंकार त्यागकर आदि पुरुष नारायण के नृसिंह रूप को नमस्कार कर क्षमा-याचना करने की प्रार्थना की। प्रह्लाद की प्रार्थना पर हिरण्यकशिपु के अहंकारपूर्ण उत्तर का चित्रण कवि कम्बर ने इस प्रकार किया है—

प्रह्लाद की प्रार्थना पर हिरण्यकशिपु ने अपनी हँसी से ब्रह्माण्ड को कँपाते हुए कहा कि तुम्हारे सामने ही तुम्हारे नृसिंह के कन्धे और पैरों को खण्डशः कर पश्चात् तुम्हारा भी सर्वनाश कर अपनी तलवार की पूजा करूँगा। इस नृसिंह के सामने मुझे नमन करने को तुम कहते हो। मैं तो कोमलांगियों के मान से भी कभी नहीं झुकने वाला हूँ। इस प्रकार कहकर हिरण्यकशिपु भगवान् नृसिंह पर आक्रमण करने को तैयार हुआ। भगवान् ने एक क्षण में अपने नखों से हिरण्यकशिपु को फाड़ डाला। हिरण्य के वध से रक्त का प्रवाह सारे संसार में बहा। हिरण्य समाप्त हुआ। देवों का विघ्न निवृत्त हुआ। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तथा देवगण उपस्थित होकर नृसिंह भगवान् का स्तवन करने लगे। नृसिंह भगवान् ने सबको अभयदान दिया। इतने में लक्ष्मी देवी आकर उपस्थित हो गयीं। रक्तोत्पलवासिनी लक्ष्मी को देखते ही नृसिंह का अपार क्रोध तुरन्त शान्त हो गया। भगवान् ने भक्त प्रह्लाद की ओर कृपाकटाक्ष से देख कर अभीष्ट वर माँगने को कहा।

भक्त प्रह्लाद की भक्ति निष्काम भक्ति है। अतः उन्होंने ब्रह्म का पद इन्द्रासन, चक्रवर्ती-राज्य, त्रिभुवनों का आधिपत्य और अणिमादि अष्ट-सिद्धि की याचना न कर केवल शाश्वत भक्ति की याचना की है। प्रह्लाद ने भगवान् से कहा कि "अब तक मैंने अपरिमित शुभफल पाया और पाने की वस्तु कुछ नहीं है। मेरी हार्दिक इच्छा यही है कि मुझे कीट का जन्म प्राप्त होने पर भी आपकी शाश्वत भक्ति प्राप्त करने का मुझ पर अनुग्रह करें। भक्त की अभिलाषा पर भगवान् नृसिंह ने प्रह्लाद को चिरकाल तक जीवित रहने का वर देते हुए इस प्रकार कहा है— 'मेरे सब भक्त तुम्हारे भक्त होंगे। देव, दानव, और मानवादि सबके तुम राजा हो। धर्म, सत्य, चारों वेद, ईश्वरानुग्रह, असीम ज्ञान और अष्टगुणवाले पुरातन पुरुष ये सब तुम्हारी सेवा करेंगे; तुम ज्योतिरूप होकर संसार में मेरे सामने रहो।"[1]

---

१. यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति अमृतो भवति, तृप्तो भवति। यत् प्राप्य न किञ्चिद्वाञ्छति न शोचति न द्वेषि न रमते नोत्साही यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति स्तब्धो भवति आत्मारामो भवति।

पृ० सं० २१–२७

कन्नड में रामायण की परंपरा

– डॉ० एन० एस० दक्षिणामूर्ति

रामायण और महाभारत भारतीय साहित्य के मेरुदण्ड हैं। इन राष्ट्रीय महाकाव्यों का हमारे जन–जीवन पर जितना अधिक प्रभाव पड़ा है, उतना अन्य किसी ग्रंथ का नहीं। सार्वकालीन तथा सार्वदेशीय तथ्यों का उद्घाटन करनेवाले ये महाकाव्य जितने प्राचीन हैं, उतने ही अर्वाचीन भी। बदलते हुए युग के मूल्य इनकी गरिमा कम नहीं कर सकते। भारतीय साहित्य का एक प्रमुख भाग--प्रभावशील अंश वाल्मीकि और व्यास की 'कविता-शक्ति' से अनुप्राणित और ज्योतित है। दक्षिण की भाषाओं में रामायण और महाभारत की जो परंपरा चली, उसको देखते हुए यह कहा जा सकता है कि ये ग्रंथ लोक मानस तथा कवि-हृदय को सदा ही अनुरंजित और आकर्षित करते आ रहे हैं। तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर यह व्यक्त होगा कि समग्र भारतीय साहित्य में महाभारत-परंपरा की अपेक्षा रामायण-परंपरा को अधिक व्यापकता प्राप्त हुई है। कन्नड के विषय में यह सर्वथा सत्य है, उपलब्ध विपुल राम-साहित्य इस बात का प्रमाण है। महाकवि कुमारव्यास ने (चौदहवीं शती ई०) रामायण लिखने की इच्छा रखते हुए भी रामायण की रचना नहीं की, उन्होंने अपने 'कन्नड-महाभारत' में लिखा—

फणिराजा सहमे कैसे
रामगाथा-कवि–भार से
निबिड रघु–चरित में जगह न पग रखने को।[1]

रामायण की लोकप्रियता ही नहीं, तद्विषयक ग्रंथों की बहुलता भी यहाँ सूचित है। कुमारव्यास से पहले कन्नड में अच्छे रामायण-ग्रंथ, संभवतः

१. तिणिकिदनु फणिराय रामा–
यणद कविगळ भारदलि तिं–
तिणिग रघुवर चरितेयलि कालिडलु तेरपिल्ल।
(कन्नड महाभारत, १–१–१७

पर्याप्त संख्या में, रचित हुए होंगे। परंतु अद्यावधि प्राप्त रामायण-ग्रंथों में अभिनव पंप उपनामधारी नागचंद्र (ग्यारहवीं शती ई०) के 'रामचंद्र चरिते पुराण' (अथवा पंप-रामायण) का नाम ही सर्वप्रथम लिया जाता है जिसकी गणना जैन-परंपरा के अंतर्गत की जाती है। हिन्दू-परंपरा की रामायण कुमार-व्यास के बाद प्रणीत हुई। कुमार वाल्मीकि (पंद्रहवीं शती ई०) का काव्य 'तोरवे-रामायण' इस परंपरा का प्रथम उल्लेख्य ग्रंथ है।

हाँ, राष्ट्रकूट नरेश नृपतुंग (सन् ८१४–८७७ ई०) अथवा उनके दरबारी कवि श्रीविजय के 'कविराजमार्ग' में, जो एक लक्षण ग्रंथ है (रचना-काल ८६० ई० के आसपास), रामायण संबंधी कुछ पद्य[1] उद्धृत किए गए हैं। परंतु, यह ज्ञात नहीं कि उस रामायण के कवि कौन हैं और वह किस शताब्दी की रचना है। उक्त पद्य कविराजमार्गकार के 'अपने पद्य प्रतीत नहीं होते। किसी प्रसिद्ध प्राचीन कन्नड-रामायण से पद्य उद्धृत किए गए हैं।

'उभयकविचक्रवर्ती' उपाधिधारी पोन्न (९५० ई०) ने 'भुवनैकरामाभ्युद' नामक रामायण विषयक एक काव्य लिखा था जिसके संबंध में उनके 'शांति-पुराण' में उल्लेख मिलता है।[2] परंतु, आज वह उपलब्ध नहीं है। केशिराज (१२६० ई०) के 'शब्दमणिदर्पण' (कन्नड का व्याकरण ग्रंथ) में उससे कुछ पद्य उद्धृत किए गये हैं। उन पद्यों से स्पष्ट होता है कि 'भुवनैक-रामाभ्युदय' एक उत्कृष्ट काव्य है। विद्वानों का अनुमान है कि पोन्न ने उस काव्य में राम के चरित के साथ अपने आश्रयदाता 'भुवनैकराम' उपाधिधारी शंकरगण्ड के चरित का अभेद स्थापित कर राम-कथा का वर्णन किया होगा।

'चावुंडरायपुराण' (९७८ ई०) में भी तीर्थंकरों की कथा के साथ साथ बलराम-कृष्ण तथा राम-लक्ष्मण की कथाओं का वर्णन मिलता है जो जैन-परंपरा के अनुसार ही है।

जैन-परंपरा की रामायणों में नागचंद्र की 'पंपरामायण' का निश्चय ही महत्वपूर्ण स्थान है। जैन-रामायणों में वैविध्य है, उनको दो प्रधान शाखाओं के अंतर्गत रख सकते हैं—(१) विमलसूरि की शाखा, (२) गुणभद्राचार्य की

१. द्रष्टव्य 'कविराजमार्ग' (सं.-एम. वी. सीतारामय्या), द्वितीय परिच्छेद, पद्य ८९, १२४, १२७, १३०, १३३.

२. पोन्न का 'शांतिपुराण', ११–१६

शाखा । कन्नड में दोनों शाखाओं से संबंधित रामायण-ग्रन्थ मिलते हैं। पंप-रामायण प्रथम शाखा के अंतर्गत है तो उपर्युक्त 'चावुण्डराय पुराण' की राम-कथा तथा नागराज (१३५० ई०) के 'पुण्यास्रव' में विद्यमान रामकथा द्वितीय शाखा के अंतर्गत है। जैन-धर्म के आचार–विचार तथा मान्यताओं के अनुसार दोनों शाखाओं की रामायण में अनेक परिवर्तन किये गये हैं। उनमें मुख्य रूप से यज्ञ-यागादि हिन्दू-विचार धाराओं के प्रति विरोधी स्वर सुनाई पड़ता है। अन्य जो विशेषताएँ हैं, वे इस प्रकार हैं—

(१) रामायण की घटना बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत के समय घटी।

(२) राम, लक्ष्मण, सीता—कोई भी अवतार पुरुष नहीं हैं। राम और लक्ष्मण कारण पुरुष हैं।

(३) वालि, सुग्रीव आदि वानर नहीं हैं, कपिध्वजावाले नरेश हैं।

(४) रावण राक्षस नहीं है, वह मांसाहारी भी नहीं है। वह दशशिर भी नहीं है।

दोनों शाखाओं की 'कथा' में अंतर भी हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) दूसरी शाखा के अनुसार सीता मंदोदरी की पुत्री है। (भारत में प्रचलित अनेक रामकथाओं में यह अंश दृष्टिपथ में आता है)। (२) दूसरी शाखा के अनुसार दशरथ की राजधानी साकेत नहीं, वाराणसी है। उसके समीप के उद्यान में ही सीतापहरण होता है। (३) सुवर्णमृग, वालि-वध तथा माया सीता का शिरच्छेद (रावण द्वारा) जैसे प्रसंग दूसरी शाखा के ग्रंथों में हैं जो वाल्मीकि-रामायण की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं।

पंप-रामायण के कवि नागचंद्र ने विमलसूरि (प्राकृत में लिखित 'पउम चरिय' के कवि) के मार्ग का अनुकरण किया है यद्यपि उनके काव्य में अन्य कुछ वैशिष्ट्य भी विद्यमान हैं। रविषेण के संस्कृत 'पद्मपुराण' अथवा 'महापुराण' (रचनाकाल ६७८ ई०) से भी उनको प्रेरणा मिली है। 'पिरिदेनिसिर्द रामकथेयं किरिदागिरे देसिमार्गमेंबेरडरोळं रसंबडेदु'' अर्थात लंबी रामकथा को संक्षेप में देशी तथा संस्कृत दोनों से रस प्राप्तकर . —उनका यह वाक्य ध्यान देने योग्य है। उनके द्वारा चित्रित त्रासद नायक रावण (Tragic hero Ravana) एक अविस्मरणीय पात्र है। उसके चित्रण में उन्होंने पर्याप्त कौशल दिखाया है यद्यपि वह विमलसूरि के चित्रण के समान वृहत् त्रासद गुण से पूर्ण नहीं है। उसका काव्य 'काव्य-गुणों' से परिपूर्ण है, उनका कवि-हृदय

उसमें प्रदीप्त हुआ है। उनके द्वारा वर्णित कथा की विशेषताओं की ओर इस प्रकार संकेत किया जा सकता है—

(१) राम–लक्ष्मण कारणपुरुष हैं। राम धर्म–धुरंधर और अहिंसाव्रती हैं। वे एक पत्नीव्रत का आचरण नहीं करते। अनेक राजकुमारियों से विवाह करते हैं। लक्ष्मण का चित्रण भी इसी प्रकार है। वे अनेक राजकुमारियों का वरण करते हैं। वे वीर, साहसी हैं, प्रतिनायक रावण का वध करतें हैं।

(२) यज्ञ, विश्वामित्र, धनुर्भंग, परशुराम, मंथरा और स्वर्णमृग के कथा–प्रसंग इसमें नहीं हैं।

(३) सीता का जन्म जनक की रानी के गर्भ से होता है। सीता के बड़े भाई प्रभामण्डल का वर्णन अन्यत्र नहीं मिलता।

(४) खेचर राजा के धनुष भंग करने के बाद राम-लक्ष्मण का विवाह होता है।

(५) रावण भीम राक्षस का वंशज है। नौ मुखवाले मुकुर में उसका रूप प्रतिबिंबित होने से वह 'दशशिर' कहलाया।

(६) वालि, सुग्रीव वानर नहीं हैं, वे 'कपिध्वज' हैं। वालि का वध इसमें नहीं है।

(७) खर-चंद्रनखी के पुत्र शंभु को लक्ष्मण मार डालता है, जिसके कारण राम-रावण में द्वेष प्रवृद्ध होता है।

(८) राम तथा उनके साथी आकाशगामिनी विद्या के बल से समुद्र पार करते हैं।

(९) हनुमान रावण की बहन का दामाद है। वह रावण के बुरे कर्म की निंदा करता है और रामचंद्र के पास आ जाता है।

(१०) रामाश्वमेध की कथा इसमें नहीं है। सीता अंत में जैन संन्यासिनी बन जाती हैं और स्वर्ग पहुँच जाती हैं।

नागचंद्र का काव्य जैन कवियों के लिए मार्गदर्शक रहा है; कतिपय हिन्दू कवियों को भी उसने प्रेरणा प्रदान की है। कुमुदेंदु (१२७५ ई०) ने नागचंद्र के मार्ग का अनुसरण कर 'कुमुदेंदु-रामायण' की रचना की है। षटपदी छंद में रचित यह रामायण प्रसाद गुण से शोभित है। इसके प्रारंभिक अंश में कवि ने लिखा है—

"विततसिद्धान्तपरिणत माघणांदि[1] मुनिपति के कारुण्य से (यह कथा) कही।" अनेक स्थलों में इस कवि ने नागचंद्र का अनुकरण किया है, इसके लिए यहाँ एक पद्य उदाहृत किया जा सकता है जिसमें रावण का पश्चात्ताप वर्णित है--

> एनगे विभीषणं हितमनादरदिंदमे पेळें केळदा
> तननविनीतनेन् गजरि गर्जिसि बयदनुजातनं विनी–
> तननरेयट्टि दुर्व्यसनियेन् कळिदें व्यसनाभिभूतना
> वनुमनुराग वेगदे हिताहित चिंतेयनेके माड्डुगुं ।।

(नागचंद्र)

(मुझसे विभीषण ने आदरपूर्वक हित की बात कही तो उसकी बात न सुनकर (मैंने) गर्जना और निंदा करते हुए उसे अविनीत कहा, उस विनीत को मार भगाया, व्यसनाभिभूत तथा अनुराग के आवेग में पड़ा मैं हिताहित की चिंता क्यों करता ?)

> रामने धरासुतेय जीवमेंबुदनरिदु
> कामकातरतेयिं दशकंधरं तोरेदु
> रामनुमनी महासतियुमं पापदिं
> कामांधनागगल्चिदेनकट कोपदिं
> दुर्यश. पटहनादमावरिसे लोकमं
> हितमनरियदे विभीषणं नुडियेयुं... ।

(कुमुदेंदु)

(राम धरासुता के प्राण हैं, यह जानते हुए भी, कामकातरता से, कोप से, दुर्यशदुंदुभी नाद के घेरे में पड़कर, विभीषण के कहने पर भी लोक और हित को न जानकर, कामांध हो हाय! राम और सीता को अलग करने का पाप किया !)

षट्पदी छंद के छः भेद हैं--शर, कुसुम, भोग, भामिनी, परिवर्धिनी और वार्धक । कुमुदेंदु-रामायण' में कुसुम, भामिनी, परिवर्धिनी और वार्धक

---

१. स्व. आर. नरसिंहाचार्य के 'कर्णाटक कविचरिते', भाग ३ (पृ. ४२८) (प्रथम संस्करण) से ज्ञात होता है कि माघणंदि (१२५३ ई.) ने 'रामकथा' लिखी थी । कुमुदेंदु को उससे भी प्रेरणा मिली होगी ।

का सुंदर प्रयोग द्रष्टव्य है। उसमें ऋतुओं का मनोहारी वर्णन है। उसमें चित्रित पात्र पाठकों के हृदय को आकर्षित कर सकते हैं।

कुमुदेंदु के बाद 'पुण्यास्रव' के कवि नागराज (१३३१ ई०) का नाम यहाँ उल्लेख योग्य है। 'पुण्यास्रव' चम्पू काव्य है जिसमें १२ अधिकार और ५२ कथाएँ हैं। इन कथाओं में 'रामकथा' भी एक है जो गुणभद्र के आदर्श को लेकर चलती है।

नागचंद्र के मार्गानुगामियों में पद्मनाभ (१७५० ई०) का भी नाम लिया जाता है। उनके 'रामचंद्र चरित्र' में रामगाथा का वर्णन है। इसी परंपरा में चंद्रसागर वर्णि (१८१० ई०) की 'जिनरामायण' का नाम विस्मृत नहीं किया जा सकता। इसके संबंध में 'कर्णाटक कविचरितें' के लेखक स्व० आर० नरसिंहाचार्यजी ने लिखा है कि यह भामिनी षट्पदी में लिखी गई है। इसमें ७५ आश्वास हैं, अंतिम आश्वास असंपूर्ण हैं। काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से इसका विशेष महत्व नहीं है। देवचंद्र (१७७०–१८४१ ई०) का "रामकथावतार" ऊपर कथित जैन संप्रदायों की विशिष्टताओं का उद्घाटन करता है।

कहा गया है कि हिन्दू-परंपरा की रामायणों में सर्वप्रथम 'तोरवेरामायण' का नामोल्लेख करना चाहिए। 'तोरवे-रामायण' के कवि नरहरि हैं जो १५०० ई० के आसपास जीवित थे। जिस भाँति 'कन्नड महाभारत' के कवि नारणप्पा (१४०० ई०) कुमार व्यास कहलाये, उसी भाँति नरहरि रामायण की रचना कर कुमार वाल्मीकि कहलाये। तोरवे बीजापुर जिले के एक ग्राम का नाम है। कवि के इष्टदेव वहाँ के नरसिंहस्वामी हैं जिनको यह रामायण समर्पित की गयी है, अतएक इसका 'तोरवे-रामायण' नाम विश्रुत हुआ। 'तोरवे-रामायण' भामिनी षटपदी में रचित है। कुमार वाल्मीकि का और एक ग्रंथ 'मैरावणन काळग' (मैरावण का युद्ध) भी रामचरित से संबंधित है। सरस वर्णक (अर्थात् देसी काव्य, गेयगुण युक्त) होने के कारण जिसका अन्य नाम 'पाड़ुगुब्ब' है। कवियों में कुमार व्यास के उपरांत उन्होंने अपना नाम गिनाया है जो एक दृष्टि से आत्मस्तुतिपरक है।

वाल्मीकि-रामायण को समग्र रूप में सर्वप्रथम कन्नड में लाने का श्रेय कुमार वाल्मीकि को है। अद्भुत रामायण की छाया भी इसमें स्पष्ट है। यह एक बृहत् काव्य है जिसमें ५,००० से अधिक पद्य हैं।

कुमार वाल्मीकि भक्त कवि हैं। आलोचकों की दृष्टि में, उन्होंने भक्ति को जितना महत्व दिया है, उतना काव्य-सौष्ठव को नहीं। उनके राम विष्णु के अवतार हैं। काव्य की प्रस्तावना में उन्होंने रामनाम के महत्व को स्पष्ट किया है। नाम-माहात्म्य का वर्णन तुलसी-रामायण में भी है। रामचरित सुकवियों का गौरव, पण्डितों का अमल ज्ञान, मुनियों का मुकुर, गुणियों का निगूढ कोष, रसिकों का सुधा-समुद्र, अकुटिलात्माओं का मनः परितोष, श्रीहरि के भक्तों का प्रियंकर तथा शिव-सेवकों का चित्तहर है। ऐसे रामचरित की ओर भक्त कवि का चित्त सहज ही आकृष्ट हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। रामनाम की महिमा का गान करते हुए उन्होंने लिखा है--

राम रामेंदवनु सग्गद
कामिनीजनकोडेयनहृ रघु–
राम रक्षिसु रक्षिसेंदव कमलभवनहनु।
रामचरितामृतव केळ्दव
रामनिगे सरियहनु जगदोळ्
रामनामके सरिय काणेनुयेंदु मुनि नुडिद ॥

(मुनि ने कहा कि जो राम राम कहता है, वह स्वर्ग की अप्सराओं का प्रभु होता है; जो कहता कि रघुराम! रक्षा करो, रक्षा करो, वह कमलभव होता है; जो रामचरितामृत सुनता है, वह राम के समान होता है; जगत् में राम नाम के समान (कुछ भी) में नहीं देखता।)

कुमारवाल्मीकि में विस्तारपूर्वक कथा कहने की प्रवृत्ति कम है, परंतु मार्मिक प्रसंगों की पहचान उन्होंने की है। 'तोरवे-रामायण' में युद्धकाण्ड का अधिक विस्तार है, वह लगभग ग्रंथ के आधे भाग में व्याप्त है। उसके कथानक में सहज आकर्षण है। उसमें मंथरा को माया के रूप में चित्रित किया गया है। रावण के चित्रण में नवीनता लाने का प्रयास किया गया है, उसके गुणों का सम्यक् रूपेण उद्घाटन हुआ है। युद्धार्थ प्रस्थान करने के पूर्व वह दरिद्रों में अपनी संपत्ति बाँट देता है और कैदियों को कारागार से मुक्त कर देता है। युद्ध के समय वह अपने किये पर किंचित् पश्चात्ताप भी करता है। पर, यह क्षणिक भाव है। वह राम की शरण में नहीं जाता। उसके विनाश का कारण उसके दुर्गुण ही हैं।

'तोरवे-रामायण' भक्ति ग्रंथ है, उसके वक्ता-श्रोता शिव-पार्वती हैं। भक्ति उसका मुख्य प्रतिपाद्य तत्व है। सरस वर्णन तथा पात्रों का मनोवैज्ञानिक चरित्र–चित्रण उसकी महत्ता के प्रमाण हैं। उसकी भाषा-शैली में औज्वल्य है।

'तोरवे-रामायण' के बाद बत्तलेश्वर विरचित 'कौशिक-रामायण' का नाम उल्लेखनीय है। कवि ने इस रामायण में यद्यपि वाल्मीकि का मार्गानुसरण किया है, तथापि इसमें कई नये प्रसंग समाविष्ट कर दिये गये हैं। ऐसे प्रसंगों में मुख्य रूप से मैरावण का वृत्तांत उल्लेख्य है। रामकथा को समग्र रूप प्रदन करने के उद्देश्य से कवि ने उक्त वृत्तांत को भी यहाँ मिलाया हो। कवि ने वर्णन किया है कि शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते समय राम-लक्ष्मण मुनिवर कौशिक का स्मरण करते हैं। अतएव, संभव है, इस रामायण को 'कौशिक' विशेषण दिया गया हो। यह ध्यान देने की बात है कि इस विशेषण का प्रयोग लिपिकारों द्वारा किया गया है जिसका उल्लेख इसके संपादक डॉ० शिवराम कारंत ने 'भूमिका' में किया है। अन्य रामायणों से भिन्नता दिखाने के लिए यह विशेषण आवश्यक भी है।

'कौशिक-रामायण' का रचनाकाल १५०० ई० के आसपास माना जा सकता है। इसके कवि बत्तलेश्वर के विषय में 'कर्णाटक कविचरिते' के लेखक स्व० आर. नरसिंहाचार्य जी ने लिखा था कि ये वीरशैव थे। परंतु, इसके संपादक डॉ० कारंत जी ने बत्तलेश्वर को हव्यक ब्राह्मण सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। ग्रंथ के पठन से दूसरा मत तथ्यपूर्ण प्रतीत होता है।

'कौशिक-रामायण' में चवालीस संधियों अथवा सर्गों में रामकथा की व्याप्ति है। ऋष्यश्रृंग मुनि के अनुग्रह से दशरथ द्वारा पुत्रकामेष्टियाग, सीता-विवाद के भोजनकाल में मंथरा द्वारा विप्रजन का परिहास और राम द्वारा उसको दण्ड, लक्ष्मण द्वारा शूर्पनखा के पुत्र शंभुक का वध, राम की पर्ण कुटी के सामने माया शूर्पनखा का अपमान, माता कैकसा के बचनानुसार विभीषण द्वारा रावण को हितवचन, कैकसा की अनुमति पाकर विभीषण का रामकी शरण में आना, इंद्रजित द्वारा मारणहोम,सम्मोहनास्त्र का प्रभाव, राम की सेना की पराजय, पाताल लंका में राम-लक्ष्मण को बलि चढ़ाने की योजना, आंजनेय द्वारा उनकी मुक्ति इत्यादि प्रसंग इस रामायण की विशिष्टता के द्योतक हैं। कवि की भाषा-शैली में स्वाभाविक गति और आकर्षण है। कवि की भक्ति-दृष्टि भी अव्यक्त नहीं है। इस कारण भी इस ग्रंथ का महत्व है। उनका कथन है–

इदु मनोभिप्राय साधक
विदु परेहसुखप्रदायक

विदु सुखाब्धिगे मूलसाधनविदु सुखप्रदवु ।
इदु सकल पौराणवेदद
हृदय मुनि वाल्मीकिवर्णित
यिदर महिमेय बल्लनीश्वरनुळिद मातेनु ॥ (१-१५)

(यह मनोभीष्ट पूर्ण करनेवाला, इह और पर का सुख प्रदान करनेवाला, सुखाब्धि का मूल साधन तथा सुखदायक, सकल पुराणों, वेदों का हृदय है। मुनि वाल्मीकि से वर्णित इसकी महिमा शंकरजी जानते हैं तो अन्य लोगों की बात भी क्या कहना।)

तिम्मामात्य (१७५० ई०) की 'रामाभ्युदयकथाकुसुममंजरी' कन्नड के रामायण-ग्रंथों में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। यह भामिनी षट्पदी में रचित है। इसमें सात काण्ड, ७८ संधियाँ (सर्ग) तथा कुल ३४४६ पद्य हैं। इसका दूसरा नाम 'आनंद रामायण' है। इसमें अन्य रामायणों का कथासार समाविष्ट कर दिया गया है। वराहनृसिंहावतारों की कथा, रावण-दिग्विजय की कथा, राम का राज्य-शासन, दिग्विजय तथा अश्वमेध की कथा का वर्णन इसमें द्रष्टव्य है। कवि ने ग्रंथ के प्रारंभ में विष्णु की स्तुति की है। तदनंतर शिव, ब्रह्म, गणपति, सरस्वती, वाल्मीकि एवं आंजनेय की स्तुति की है। प्रसाद गुणपूर्ण इसकी भाषा-शैली में सहज आकर्षण है।

उन्नीसवीं शती के कवि मुद्दण[1] का 'श्रीरामपट्टाभिषेक' एक श्रेष्ठ प्रबंध काव्य है। यह ग्रंथ वार्धक षट्पदी में है। श्रीराम द्वारा विभीषण का लंका में राज्याभिषेक, राम का नंदी ग्राम में भरत को दर्शन तथा राम का सिंहासनारोहण इसमें वर्णित कथानक है। इस कथा के वक्ता-श्रेता आदिशेष तथा वात्स्ययन हैं। ग्रंथ के प्रारंभ में शिवस्तुति है। तदनंतर पार्वती, गणपति, सरस्वती, विष्णु, आंजनेय एवं वायु की प्रशंसा है। इसमें कवि की भक्ति भावना भी प्रकट हुई है। कवि का यह कहना सत्य है कि श्रीरामपट्टाभिषेक 'राम-नामामृत घटिका' है। इसके वर्णन अत्यंत मनोहर हैं।

---

१. मुद्दण का वास्तविक नाम नंदळिके लक्ष्मीनारणप्पा (१८६९-१९०१ ई.) था। स्वा. शार. नरसिंहाचार्य जी ने १८ वीं शती के ग्रंथों में 'श्रीराम-पट्टाभिषेक' का नामोल्लेख किया है (द्रष्टव्य 'कर्णाटक कविचरिते, भाग ३, पृ. ८१)। इसका कारण यह है कि मुद्दण ने इसका प्रकाशन रहस्य पूर्ण रीति से किया था।

मुद्दण के और दो ग्रंथों का उल्लेख भी यहाँ किया जाना चाहिए। वे हैं–'अद्भुत रामायण' तथा 'रामाश्वमेध'। अद्भुत रामायण का मूल शाक्त संप्रदाय की रामायण का कथानक है। सीताजी द्वारा शतकंठ रावण का वध इसका वर्ण्य विषय है। यह प्राचीन कन्नड गद्यशैली में है। यह आकार की दृष्टि से छोटा ग्रंथ है, पर इसका साहित्यिक महत्व अधिक है। सुन्दर और प्रांजल गद्य-शैली इसकी सबसे बड़ी विशेषता है।

'रामाश्वमेध' मुद्दण की सर्वश्रेष्ठ कृति है। यह भी गद्य में है। यह ध्यान देने की बात है कि संधिकाल के कवि मुद्दण में प्राचीनता और नवीनता की विलक्षण प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं। 'रामाश्वमेध' का मूल पद्मपुराणांतर्गत शेष-रामायण है। इस कारण इसका अन्य नाम 'शेष-रामायण' है। मूल का अनुसरण करते हुए कवि ने इसमें अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। कथा के निरूपण में भी उन्होंने नूतन उद्भावनाएँ की हैं। वर्षा-वर्णन के स्वतंत्र रूपक से प्रारंभ होनेवाला उनका काव्य पाठकों के चित्त में मात्र कौतूहल का संचार नहीं करता, अपि तु मंगलाचरणादि प्राचीन परिपाटी से भिन्न नूतन प्रवृत्ति का भी उद्घाटन करता है। मुद्दण और मनोरमा (उनकी पत्नी) के संभाषण के रूप में ग्रथित यह काव्य उनकी नूतन कल्पना और क्रांतिकारी व्यक्तित्व का परिचायक भी है। 'पद्यं बध्यं, गद्यं हृद्यं' एवं, 'जिस कंठ में पानी नहीं उतरता, उसमें मोदक ठूंसने के समान हुआ'–मनोरमा के मुँह से कहलाये गये ऐसे वचन नये युग की प्रवृत्ति के लक्षण हैं।

'रामाश्वमेध' सरस, सुंदर काव्य है। सभी रसों का उसमें परिपाक हुआ है। मुद्दण-मनोरमा-संवाद इस काव्य का केंद्र स्थान है। उसमें कवि की परिहास-प्रवृत्ति सुंदरता के साथ अभिव्यक्त हुई है। मुद्दण की 'मनोरमा' साहित्यलोक की एक जीवंत सृष्टि है।

जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है, 'रामाश्वमेध' में रामायण के उत्तर-काण्ड की कथा का वर्णन है। सोलह आश्वासों में कथा का विस्तार है। सीता–परित्याग, वाल्मीकिदर्शन, हनुमत्पराजय जैसे प्रसंग अत्यंत हृदयाकर्षक हैं। करुणापूर्ण वर्णन करने में कवि अत्यंत सिद्धहस्त हैं। उनके द्वारा चित्रित सीता और राम पाठकों के मन: पटल से शायद ही अदृश्य हो सकते हैं।

अठारहवीं और उन्नीसवीं शती की अन्य रामकथाविषयक रचनाओं में सुब्रह्मण्य (१७५० ई०) की 'हनुमद्रामायण' (इसका दूसरा नाम 'हनुमद्राम-विजय' है, पंद्रह आश्वासों में कथा का विस्तार है, राम के चरित के साथ-साथ

हनुमान के चरित का भी वर्णन है।), हरिदास (१७५० ई०) की 'मूलबल-रामायण' (यह भामिनी षट्पदी में है, १३ संधियाँ और ७२६ पद्य हैं; श्रीराम द्वारा रावण-कुंभकर्ण के मूलबल के सहार का वर्णन है।), वेंकामात्य (१७७० ई०) की 'रामायण' (वार्धक षट्पदी में रचित है, १९५ संधियाँ और ९८६५ पद्य हैं।) और 'हनुमद्विलास', मैसूर के नरेश कृष्णराज तृतीय (१७९४–१८६८ ई०) की 'अध्यात्म रामायण', 'उत्तररामचरित कथा' और 'रामकथाकल्पवृक्ष', गेरसोप्पे शांतय्या (१८३० ई०) के 'सीताकल्याण' और 'सीतावियोग', अळिय लिंगराज (१८२३–१८७४ ई०) की 'लवकुशरकथे', 'रामोदयकथे', 'वनवासरामायण', वालिसुग्रीवर काळग' (वालि-सुग्रीव का युद्ध), 'सीता कल्याण', 'सीतापहार', सीता-स्वयंवर' और 'लंकादहन', वीरनगेरे पुट्टण्णा (१९ वीं शती) की 'पंचवटी रामायण'' नंजनगूडु सुब्बाशास्त्री के 'सीताचरित्रे' और 'उत्तर सीताचरित्रे', शांतकवि (इनका वास्तविक नाम बाळाचार्य सक्करि था) के 'सीतारण्यप्रवेश', बागलूरु रामस्वामी की 'वासिष्ठ रामायण' (५४ सर्ग हैं; कंद, षट्पदी आदि छंदों के अतिरिक्त 'वचन' भी है) बी. वेंकटाचार्य की 'सीतावनवासकथे' तथा 'सीताराम', कं· टि. श्रीनिवासराय की 'शतकंठरामायण' एवं किसी अज्ञात कवि की 'मूलक रामायण' (१६०० ई० के आसपास रचित) के नाम यहाँ लिए जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ यक्षगान और नाटक भी मिलते हैं जिनका उल्लेख यहाँ नहीं किया गया है। जिन कवियों ने आंगिक रूप से रामकथा का वर्णन किया है, उनमें मध्यकाल के प्रसिद्ध कवि लक्ष्मीश (१५५० ई०) का नाम विस्मृत नहीं किया जा सकता। उन्होंने 'कन्नड जैमिनि-भारत' में 'सीतापरित्याग' का अत्यंत हृदयस्पर्शी वर्णन किया है। उक्त प्रसंग में उन्होंने सीता और लक्ष्मण का मनोहारी चरित्र चित्रण किया है।

आधुनिक युग में जिन कवियों ने रामकथा को अपने काव्य का विषय बनाया है, उनमें राष्ट्रकवि डॉ० के. वी. पुट्टप्पा (उपनाम 'कुवेम्पु') तथा डॉ० डी. वी. गुण्डप्पा (उपनाम डी. वी. जी.) के नाम अग्रगण्य हैं। पुट्टप्पाजी के 'श्रीरामायण दर्शनम्' को साहित्य अकादमी तथा भारतीय ज्ञानपीठ के पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। 'श्रीरामायण दर्शनम्' पचास सर्गों का विशालकाय महाकाव्य है जिसके चार भाग हैं (प्रत्येक भाग का नाम है, यथा-अयोध्या संपुट, किष्किन्धा संपुट, लंका संपुट और श्री संपुट)। तेईस हज़ार पंक्तियों के इस महाकाव्य में कवि की दीर्घकालीन साहित्यिक तपस्या फलवती हुई है। यह महाछंद में रचित आधुनिक युग की मेरुकृति है किंवा 'जगद्भव्य रामायण' है। इसके नाम से ही

स्पष्ट है कि इसमें दार्शनिक दृष्टि की प्रधानता है। दार्शनिक उद्‌घाटन के लिए यहाँ श्रीरामचरित वैसा ही बाह्य आवरण है जैसा कि आत्मा के लिए शरीर का आवरण होता है। वेदांत में पंचकोशों द्वारा आत्मा के विकास की परिपूर्ण स्थिति का वर्णन किया जाता है। इसी के आधार पर इस काव्य में प्रतीक योजना के द्वारा दार्शनिक विचारों का प्रतिपादन किया गया है। अयोध्या संपुट मनोमय कोश का, किष्किंधा संपुट प्राणमय कोश का, लंका संपुट अन्नमय कोश का तथा श्री संपुट विज्ञानमय और आनंदमय कोशों का प्रतीक है। कवि की ये प्रारंभिक पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं—"बहिर्घटनाओं को चित्रित करनेवाला लौकिक चरित नहीं है यह, अलौकिक नित्य सत्यों को प्रतिबिंबित करने वाला सत्यस्य सत्य कथन है।" इस काव्य में कवि की युगीन प्रज्ञा का भी अच्छा निदर्शन मिलता है। रावण, मंथरा, उर्मिला आदि के चरित्र-चित्रण में कवि ने जो नूतन दृष्टिकोण दर्शित किया है, वह आधुनिकता बोध का प्रमाण है। डी. वी. जी. का 'श्रीराम परीक्षणम्' आधुनिक युग के चिंतन का एक सुपरिणाम है। रामकथा में नवीन स्फूर्ति का संचार करनेवाला यह ग्रंथ आलोचकों की प्रशंसा को सहज ही प्राप्त कर सका है।

अंत में, लोकगीतों के रूप में विद्यमान रामकथा-परंपरा की ओर संकेत करना आवश्यक प्रतीत होता है। लोकगीतों में वाल्मीकि का अनुसरण तथा तद्भिन्न मार्ग का अन्वेषण दोनों अवलोकनीय हैं। कथानक तथा अभिव्यंजना की नूतनता ऐसे लोकगीतों की विशिष्टता कही जा सकती है। सीता-जन्म-वृत्तांत, राम का वनवास, सीता-स्वयंवर, लक्ष्मण से शूर्पनखा के पुत्र सुण्कुमार' का वध, काकासुर की कथा, सीतापहरण तथा लव-कुश की कथा जैसे प्रसंगों का वर्णन लोकगीतों में विशेष कौतूहल वर्धक प्रतीत होता है। सीता रावण की पुत्री है—लोकगीतों में अभिव्यक्त यह विचार हमारा ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करता है। इसी प्रकार कुछ अन्य विचार भी कम आकर्षक नहीं हैं जैसे राम के राज्य त्याग के बाद राम-सीता का विवाह होता है। रावण मारीच की सहायता से सीता का अपहरण नहीं करता, वह स्वयं माया मृग के वेष में आता है। आखेट के लिए निकले राम-लक्ष्मण के घोड़े लव-कुश के साथ उनके युद्ध के निमित्त बनते हैं। कथानक में दृष्टिगत होनेवाले ऐसे अनेक परिवर्तन लोकमानस की विभिन्न चिंतन धाराओं के ही परिणाम हैं।

—:०:—

पंप रामायण : एक परिचय

डॉ. एम. एस. कृष्ण मूर्ति

कन्नड़ में उपलब्ध रामायणों को तीन श्रेणियों में बाँट सकते हैं— १. वैदिक रामायण २. जैन रामायण ३. तांत्रिक रामायण। समय की दृष्टि से जैन रामायण वैदिक और तांत्रिक रामायणों से प्राचीन है। कन्नड़ में रामायणों की विपुलता की ओर संकेत करते हुए भक्त कवि कुमार व्यास (१४३० ई.) ने कहा था 'रामायणों के भार से शेषनाग डोल उठा। उनके बीच पाँव धरने के लिए भी जगह नहीं है। कन्नड़ के आदि ग्रंथ कविराज मार्ग (८१४–८७७ ई.) में किसी रामायण के अनुष्टुप श्लोकों का उद्धरण है, उसके उपरांत कन्नड़ के रत्नत्रयों के एक पोन्न (९५० ई.) ने "भुवनैकरामाभ्युदय" नामक एक लौकिक रामायण की रचना की किन्तु यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। उपलब्ध ग्रंथों में कन्नड़ के आदिकालीन कवि नागचंद्र (१११०) का 'रामचन्द्र चरित पुराण' अथवा 'पंप रामायण' ही प्राचीन है। नागचंद्र के पहले कन्नड़ के आदि कवि पंप (९४० ई.) हुए थे। पंप अखंड कन्नड़ साहित्य के एकच्छत्राधिपति थे अतः उन्हीं के अनुकरण में लोगों ने काव्य-रचना की। उनको अपना गुरु माना। उनकी शैली को स्वीकार किया। अतः नागचंद्र ने भी पंप का आदर्श स्वीकार करते हुए अपने को अभिनव पंप अभिधान से भूषित किया। इस कारण उसकी रामायण 'पंप रामायण' कहलाती है।

नागचंद्र के जीवन के बारे में बहुत सी बातें ज्ञात नहीं हैं। कहा जाता है कि उसने उत्तर कर्नाटक के बीजापुर में एक जैन मंदिर का निर्माण कराया था। यह भी कहा जाता है कि वह होयसल नरेंद्र बल्लालराय का दर्बारी कवि था। वहाँ की कवयित्री कंती और इसमें समस्यापूर्ति स्पर्धा हुई थी। किन्तु इसकी सत्यता पर विद्वानों ने प्रश्न चिह्न लगाये हैं। इतना कहा जा सकता है कि जैन कवि नागचंद्र में क्षात्र एवं पौरुष की अपेक्षा भक्ति

एवं वैराग्य की ही प्रधानता है। नागचंद्र के दो काव्य मिलते हैं — १. मल्लिनाथ पुराण २. रामचन्द्र चरित पुराण। पहले ग्रंथ में जैन तीर्थंकर मल्लिनाथ की कथा निरूपित है। 'रामचंद्र चरित पुराण' नागचंद्र की निधि एवं प्रतिनिधि कृति है। चंपू शैली में लिखा यह काव्य कन्नड के गौरव ग्रंथों में एक है। तुलसीरामायण की भाँति इसमें काव्य और पुराण दोनों का समन्वय हुआ है। किन्तु यह जैन रामायण है। कवि ने वाल्मीकि का अनुगमन न कर विमलसूरि, रविषेण, स्वयंभु आदि जैन कवियों का अनुगमन किया है। जैन पुराणों के जैसे लोक काल स्वरूप, कुलधरचरित, जिन, जैन चक्रवर्ती आदि का वर्णन है। राम-रावण की युद्धवीर कथा जैनियों के हाथ में पड़कर जिनधर्माख्यान बन गयी। अत: वैदिक संप्रदाय की कथा से जैन संप्रदाय की कथा में बहुत अंतर पड गया है। उसके प्रमुख वेदों को यों निरूपित किया जा सकता है—१. राम विष्णु का अवतार नहीं, मामूली मनुष्य है। राम और लक्ष्मण जैन धर्म के बल एवं अच्युत नामक शलाका पुरुष हैं, कारण पुरुष हैं। राम धर्म-नायक है। अहिंसा व्रति है। लक्ष्मण वीर नायक है। प्रतिनायक रावण को मारनेवाला यहाँ राम नहीं, लक्ष्मण ही है। २. यज्ञ-याग आदि बातें नहीं हैं। विश्वामित्र आदि ऋषि-मुनि भी यहाँ नहीं हैं। शिवधनुभंग का प्रसंग भी नहीं है। परशुराम, मंथरा आदि के लिए भी यहाँ स्थान नहीं है। ३. सीता भूमिजाता नहीं, जनक की रानी की औरस पुत्री है। प्रभामंडल नामक उसका एक बडा भाई भी है। ४. खेचर पति के दो धनुषों को झुकाकर राम-लक्ष्मण सीता, आदि से विवाह करते हैं। ५. राम यहाँ एक पत्नीव्रती नहीं है। वह आठ हज़ार स्त्रियों से विवाह करता है। लक्ष्मण भी यहाँ एक पत्नीव्रती नहीं वह अठारह हज़ार स्त्रियों से विवाह करता है। ६. राम और लक्ष्मण के वैभव पर भरत विषाद प्रकट करता है। इस कारण कैकेयी अपने बेटे के लिए राज्य मांगती है। राम खुशी-खुशी उसे दे देता है। ७. रावण आदि यहाँ राक्षस नहीं राक्षस वंशज हैं। रावण दशशिर भी नहीं। नौ मुखों वाले एक दर्पण में उसका मुख प्रतिबिंबित हुआ। इस कारण उसका नाम दशमुख पड़ा। कांचनमृग का प्रसंग भी यहाँ नहीं है। ८. वालि सुग्रीव आदि कपि नहीं अपितु कपिध्वज वाले खेचर हैं। वालि वध का प्रसंग भी नहीं है। शंभुक, खर और चंद्रनखी (शूर्पणखा) का पुत्र है। उसकी हत्या लक्ष्मण गलती से करता है। यही हत्या राम-रावण युद्ध का मूल कारण बनती है। ९. सेतु बंध यहाँ नहीं है। राम की सेना आकाशगामिनी विद्या से समुद्र पार करती है। १०. हनुमान रावण की बहिन का

दामाद है। वह रावण के कुकृत्यों से बाज आकर राम के पक्ष में जा मिलता है। वह अपनी विद्या के बल से लंका को जलाता है। ११. विभीषण का चरित्र भी यहाँ परिवर्तित हुआ है। जानकी के कारण दाशरथी के द्वारा रावण की मृत्यु होगी--यह दिव्यादेश सुनकर वह दशरथ को ही मारने का प्रयत्न करता है। अंत में उसका मन बदलता है। वह रावण को धर्मोपदेश देता है। किंतु उससे अनादृत होकर वह राम के पक्ष में जा मिलता है। सीता का वाल्मीकि के आश्रम में जाना, अश्वमेध, सीता की अग्निपरीक्षा आदि बातें यहाँ नहीं हैं। वह जैन संन्यासिनी बनकर एक स्वर्ग की इंद्र पदवी प्राप्त करती है।

इन बातों से स्पष्ट है कि जैनियों ने अपनी धार्मिक दृष्टि एवं वास्तविकता की दृष्टि से वाल्मीकि रामायण का संशोधन किया है। इस प्रकार आदि काव्य रामायण यहाँ पुराण बन गया है। यहाँ का राम मानव दौर्बल्यों से युक्त है, किंतु विकसनशील है। अंत में अपने चरित्र को सुधारकर अहिंसा के द्वारा वह जिन बनता है। लक्ष्मण उसका उलटा है। वह राग-द्वेषों से ग्रस्त होकर हत्या करता है और अधोगति को प्राप्त करता है। रावण आदर्श चरित्रवान होते हुए भी दुर्विधि के कारण परांगना-मोह में पडता है और नरक में जाता है। किंतु अंत में वह भी विभिन्न भवावलियों में शुद्ध होकर अंत में मोक्ष प्राप्त करता है। इसका संदेश यही है...कर्म से ही जीवियों की दुर्गति होती है। जिन-दीक्षा के द्वारा, अहिंसा के द्वारा कोई भी मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। इस दर्शन के आलोक में सारी घटनाएँ सभी चरित्र यहाँ प्रस्तुत किये गये हैं। इतना होते हुए भी मानवीय सन्निवेशों के निर्माण में, मार्मिक प्रसंगों की पहचान में यह काव्य किसी भी काव्य से पीछा नहीं है, सीता का चरित्र-चित्रण अत्यंत मनोहर बना है। उसमें संशोधन करने का साहस इन्होंने नहीं किया। वाल्मीकि की सीता की भाँति नागचंद्र की सीता भी अत्यंत सुंदर चरित्र है। उसके रूप–लावण्य का वर्णन कविने अद्भुत ढंग से किया है। एक बानगी—

> हार मरीचि मंजरि सुधारसधारे सुधांशु लेखे।
> कर्पूरशलाके नेत्र सुखदायकमी दोवेतल्लमीके शृं–
> गारसमुद्रमं कडेये हृद्भवनुद्भवेयादलेंदु क–
> ण्णारे दशास्यनीक्षिसिदनीक्षिसि कण्णरिदारे मम्मथं ॥

–वह हारमरीचि मंजरी सी, सुधारसधारा के जैसे, सुधांशु लेखा के समान है। किंवा कर्पूरशलाका हो। इसप्रकार वह रमणी नेत्रसुखदायक है। श्रृंगार समुद्र का मंथन करने पर यह मन्मथ जननी पैदा हुई होगी, इस प्रकार रावण ने आँखें मार कर उसे देखा। तब उसे देखकर मन्मथ ने हुंकार किया।

तुलसी के राम की भाँति नागचंद्र का राम भी सीता के वियोग में दुखी होकर खग-मृगों से उसका पता पूछते चलता है।

कलहंसालसयानेयं मृगमदामोदास्यतिश्वासेयं।
तलिरे तावरेये मदालिकुलमें कर्नेरदलेये मत्तको।।
किलमे कंडिरे पल्लवाधरेयनंभोजास्येयं भृंगकुं।
तलेयं कैरवनेत्रेयं पिकरवप्रख्यातेयं सीतेयं।।

हे पल्लव, हे कमलिनी, हे मत्त अलिकुल, हे कुवलय, अरी मतवाली कोयल क्या तुमने देखा उस कलहंसिनी को, मृगमदामोद आस्या निश्वासाको, पल्लवाधरा को तुमने देखा है क्या? उस भृंग कुंतला, कैरवनेत्रा एवं, पिक-रवप्रख्याता सीता को तुमने तो कहीं नहीं देखा?'

पंप रामायण को अमर करनेवाली वस्तु है रावण का चरित्र-चित्रण। नागचंद्र का रावण भारतीय साहित्य के लिए उसकी एक विनूतन देन है। यहाँ का रावण पाश्चात्य दु:खांत नाटकों (Tragedy) के एक दुरंत (Tragic hero) नायक के रूप में आता है। रावण को परम्परागत दृष्टि से न देखकर कवि ने यहाँ मानवीय वासना के पंक में पडनेवाले एक उदात्त व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है। रावण महावीर है, वह जगद्विद्रावण रावण है, धर्मानुरागी है, महानुभाव है। वह परदार सोदर भी है। उसने अपने गुरु के सामने परांगनाविरह व्रत स्वीकार किया था। उसके इस परदार सोदरत्व का परिचय करानेवाली एक सुंदर घटना यहाँ आती है। एक बार रावण दिग्विजय करते हुए नलकूबर के दुर्ग पर चढाई करता है। बहुत समय तक जूझने पर भी जब उसमें उसे सफलता नहीं मिलती है तब उस नलकूबर की पत्नी उप-रंभा उसके रूप पर रीझकर उससे प्रणय-याचना करते हुए अपनी एक दूती भेजती है। वह यह कहला भेजती है कि यदि रावण उसको स्वीकार करेगा तो वह दुर्ग का रहस्य बतायेगी। रावण उससे रहस्य जानकर उस दुर्ग को जीत लेता है। जब उपरंभा उसके पास आती है तब रावण उसे समझाता है

कि वह उसकी गुरु है प्रेयसी नहीं हो सकती। वह उसके पति को बुलाकर उन दोनों को राज्य सौंपकर चला जाता है। ऐसा महान पुरुषशील धुरंधर रावण भी कर्म विपाक से परांगना-मोह में पड़ता है। राग कितने बलवान हैं और उनके मुक़ाबले में त्रिलोक विजयी रावण भी कितना दुर्बल है। यह जानेंगे तो रावण के प्रति हमारी घृणा नहीं सहानुभूति पैदा होती है। जिस प्रकार आसमान के किसी कोने में रहनेवाला मेघखंड समय आने पर सारे आसमान में छाकर बरसने लगता है, उसी प्रकार रावण का यह दुरंत दोष (Tragic flaw) उसके पतन का कारण बन जाता है। अंत में जब कदम-कदम पर उसकी हार होती है तब विभीषण आदि उसे समझा देते हैं कि सीता को छोड दो। तब रावण कहता है "यदि मैं अभी सीता को ले जाकर राम को सौंपूंगा तो मेरे पराक्रम, पौरुष, शौर्य आदि में बट्टा लगता है।" मैं रण में अपना पौरुष दिखाकर राम और लक्ष्मण को विरथ बनाकर उन्हें घर ले जाऊँगा और सीता को सौंपूंगा। किन्तु रावण की आशा पूर्ण नहीं हुई और वह लक्ष्मण के चक्र से आहत हो प्राण-त्याग करता है। इस तरह रावण एक दुरंत ताडित महामानव के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत होता है।

नागचंद ने विमलसूरी आदि की हूबहू नकल नहीं की है। मूल कथानक में उसने काट-छाँट की है, यत्र-तत्र परिवर्तन वा परिवर्धन किये हैं। कवि ने विमलसूरी के नीरस भागों को त्यागकर केवल सरस भागों को ही स्वीकार किया है। संग्रह-कला में वह इतना निपुण है कि उसका ग्रंथ मूल ग्रंथ का दशमांश भी नहीं है। मंडोदरी का पात्र यहाँ उतना अच्छा नहीं बन पड़ा है। वह सीता को रावण की ओर प्रवृत्त करने के लिए प्रयत्न करती है जो एक पतिव्रतांगना के लिए बिलकुल अनुचित है। नागचन्द्र के प्रकृति-वर्णन अत्यंत मनोहर हैं। नागचंद्र का अत्यन्त प्रिय रस है--शांतरस। यहाँ तक उसका दावा है कि शांत ही एकमात्र रस है। "निनगे रसमोदे शंतमे जिनेद्रव"--(हे जिनेंद्र तुम्हारे लिए एक मात्र रस शांत ही है) अतः इस ग्रंथ में युद्धों का वर्णन होते हुए भी शांत रस के प्रसंग अधिक हैं। हर कहीं जिन मंदिर, तपोवन, वैराग्य प्रेरक वातावरण हैं।

नागचंद्र का प्रिय अलंकार है--अर्थान्तरन्यास। वैराग्य एवं कर्म विपाक के वर्णन में वह पटु है। नागचंद्र की शैली में अर्थ व्यक्ति एवं प्रसाद की प्रधानता है। उसकी शैली को कन्नड के आलोचकों ने वैदर्भी शैली घोषित किया है। विद्यानटी सरस्वती का वर्णन उसकी वैदर्भी शैली का सुन्दर उदाहरण है।

परमब्रह्मशरीरयष्टि जनतांतर्दृष्टि कैवल्यबो
धरमामौक्तिकहारयष्टि कवितावल्ली सुधावृष्टि स-
र्वरसोत्पाद नवीनसृष्टि बुधहर्षाकृष्टि सर्वांगसुं
दरि विद्यानटि नाटकं नलिगे मत्काव्यस्थलीरंगदोल ।

वह विद्यानटी जो परमब्रह्मशरीरयष्टि है, जनतांतर दृष्टि है, कैवल्यबो-धरमामौक्तिकहारयष्टि है, कवितावल्ली सुधावृष्टि है, सर्वरसोत्पाद नवीन सृष्टि है, बुधहर्षाकृष्टि है, सर्वांगसुंदरी है--मेरे काव्य मंच पर विराजे । कवि नागचंद्र की यह उक्ति सचमुच सत्य है । कवि ने अपनी जनतांतर दृष्टि के द्वारा आदिकाव्य रामायण को मानव की युगयुगांतरों की कर्म गाथा के रूप में प्रस्तुत किया है । यह कथा भगवत् शक्ति की कहानी बनने के बदले नियति के विरुद्ध मानव-संघर्ष की कहानी बनी है । यही उसकी जनतांतर दृष्टि है । इसी में उसकी महत्ता है ।

मलयालम में रामायण की परंपरा

--पी. आर. भास्करन नायर

भारत के सुदूर दक्षिण में स्थित केरल प्राचीन काल से अपनी साहित्यिक संपदा के लिए प्रसिद्ध रहा। यहाँ की भाषा मलयालम मूल द्रविड भाषा से उद्भूत मानी जाती है और बहुत समय तक इसपर तमिल का आधिपत्य रहा। फिर भी केरल प्रांत अतिप्राचीन काल से संस्कृत भाषा के अध्ययन-अध्यापन का बडा केन्द्र रहा और इस प्रांत ने अनेक संस्कृत विद्वानों को जन्म दिया। संस्कृत के व्यापक अध्ययन के फलस्वरूप वाल्मीकि एवं व्यास यहाँ के कवियों के प्रेरणास्रोत रहे। यही कारण है कि केरल में वाल्मीकि रामायण का अत्यधिक प्रभाव रहा तथा यहाँ रामायणों की एक सुदीर्घ परम्परा चली। यहाँ तक कि मलयालम के आदिम स्वरूप लोकगीतों तक में रामकथा को प्रश्रय प्राप्त हुआ था। आज भी केरल के प्रत्येक घर में सन्ध्या कालीन भजन-कीर्तन में 'रामनाम संकीर्तन' को प्रमुख स्थान प्राप्त है और उस कीर्तन में प्राचीन रामकथा का स्वरूप भी प्राप्त होता है। निस्संदेह यह कहा जा सकता है कि आगे के राम-काव्यों की उत्स भूमि लोकगीतों में प्रचलित यही राम-कथा रही।

रामचरितम्

मलयालम में प्राप्त राम काव्यों में सबसे प्रथम रचना रामचरितम् है, जो पाट्टु (गीत) शैली में लिखा गया है। यह माना जाता है कि तिरु-वितांकूर के एक राजा ने रामायण के युद्धकाण्ड को आधार मानकर बारहवीं शती में इसकी रचना की। इसके रचयिता का नाम चीरामम दिया गया है, जो महाकवि उल्लूर के मतानुसार तिरुवितांकूर के उस समय के राजा श्री वीर-रामवर्मा के अतिरिक्त और कोई नहीं था। इस ग्रन्थ का वास्तविक नाम 'इरामचरित' ही माना जाता है। मलयालम भाषा का प्रथम काव्य ग्रन्थ होने का गौरव इसी को प्राप्त होता है। इसका प्रतिपाद्य युद्धकाण्ड होता हुआ भी बीच-बीच में सुन्दरकाण्ड, अरण्यकाण्ड तथा किष्किन्धाकाण्ड की

कथा का संकेत भी प्राप्त होता है। द्रविड़ लिपियों में रचे गये इस काव्य में छन्द तमिल के हैं और शब्दों पर भी तमिल का अत्यधिक प्रभाव परिलक्षित होता है। संस्कृत शब्दों का प्रयोग न्यून मात्रा में ही हुआ है। "इसमें जनता की व्यवहार भाषा नहीं, बल्कि विकासोन्मुख मलयालम की मधुरता है।"[1] वाल्मीकि की रामायण से प्रतिपाद्य अपनाने पर भी कवि अपने वस्तु-वर्णन में पर्याप्त स्वतंत्र रहा और उसने अनेक स्थलों पर अपनी मौलिकता का परिचय दिया।

रामकथा पाट्टु :–

रामकाव्यों की शृंखला में यह दूसरी कड़ी है। इसके रचयिता तिरुवितांकूर के नेय्याट्टिनकरा के कोवलम् नामक प्रदेश के एक कृषक अय्यं-पिल्ल आशान् में काव्य-प्रतिभा थी, किन्तु उन्होंने इसकी रचना केवल भजन केलिए की थी, अपनी काव्य-चातुरी दिखाना उनका उद्देश्य नहीं रहा। इसके रचनाकाल के संबंध में विद्वानों में मत भेद है। फादर कामिल बुल्के ने अपने 'राम काव्य' में इसे रामचरितम् की समसामयिक रचना माना है,[2] जो अवश्य ही भ्रामक है। डा० पी. के. नारायण पिल्लै ने इस ग्रंथ को सन् १९६५ में खोज निकाला और विस्तृत व्याख्या सहित इसे प्रकाशित किया। उन्होंने अपने अकाट्य तर्कों द्वारा यह सिद्ध किया कि इसकी रचना सन् १४०० ई. के आसपास हुई।

आशान् अपनी कृति के इतिवृत्त केलिए वाल्मीकि के ऋणी अवश्य हैं। किन्तु वाल्मीकि का अंधानुकरण करना उनका ध्येय नहीं था। उन्होंने वाल्मीकि की रामायण को अपना उपजीव्य अवश्य माना, पर अनेक घटनाओं को देश-काल-परिस्थिति के अनुरूप परिवर्तित एवं परिवर्द्धित रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने अपने आराध्य देव को एक ऐतिहासिक पुरुष के रूप में प्रकट किया। इस काव्य में साहित्य, संगीत एवं अभिनय तीनों का त्रिवेणी-संगम हुआ है। इस कारण इसे तमिल के चिलप्पतिकारम की तरह मुत्तमिष काव्य कहा जा

---

१. हिन्दी साहित्यकोष-भाग २, पृ. ६२२.

२. रामकाव्य, पृ. २२२.

सकता है क्योंकि इसमें इयल (काव्य), इशै (गीत) तथा नाटक तीनों का सुन्दर समावेश हुआ है। तिरुवितांकूर के मंदिरों में इसका अभिनयात्मक गायन हुआ करता था, इसके प्रमाण प्राप्त हो चुके हैं। मलयालम साहित्य में कालान्तर में प्रचलित 'तुळ्ळल' शैली का बीजारोपण यहीं देखा जा सकता है और इस दृष्टि से इस कृति का सम्माननीय स्थान है। आशान् की संवाद-शैली प्रभावकारी है। अंगद-रावण संवाद मार्मिक है। शैली की दृष्टि से यह कृति तमिल शैली में लिखी गयी है। आशान् की यह कृति अनेक भाव-पूर्ण वर्णनों, मार्मिक प्रसंगों एवं रोचक शैली के कारण कैरली का काव्य रत्न है और इसी विशेषता से प्रभावित हो उल्लूर एस. परमेश्वरय्यर ने आशान् को मलयालम के नवरत्नों में प्रथम स्थान प्रदान किया।[1]

कण्णशश रामायणम् :–

मलयालम के रामकाव्यों में इस कृति का महत्वपूर्ण स्थान है। चौदहवीं शती के उत्तरार्द्ध में वर्तमान निरणम कवियों में एक रामपणिक्कर इसके रचयिता हैं। फादर कामिल बुल्के के अनुसार यह काव्य वाल्मीकि की रामायण का अनुवाद मात्र है।[2] वस्तुस्थिति यह है कि प्रतिभाशाली राम पणिक्कर ने रामकथा को अपना विषय बनाया और उसमें आवश्यक परिवर्तन लाकर उन्होंने अपनी मौलिक सूझ-बूझ एवं स्वच्छन्दवृत्ति का परिचय दिया। उन्होंने राम को देवता के रूप में प्रतिष्ठित नहीं किया, राम की व्यक्ति-सत्ता को प्रश्रय दिया। वर्णन-शैली एवं प्रतिपाद्य दोनों पर तमिल की कंबरामायण का भूरि प्रभाव देखा जा सकता है। भाषा में तमिल शब्दों की प्रधानता है, साथ ही सप्रत्यय संस्कृत शब्दों के प्रयोग भी पाये जाते हैं। इस दृष्टि से मलयालम साहित्य पर धीरे-धीरे बढ़ते हुए संस्कृत प्रभाव का यह काव्य सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है। अत: तमिल शैली से मुक्त होकर संस्कृत की ओर लपकने केलिए तड़पती मलयालम का प्रथम रूप इस काव्य में द्रष्टव्य है और इसी का विकसित भाषा-सौष्ठव हम एषुत्तच्छनकृत रामायण में देख पाते हैं। प्रतिभाशाली पणिक्कर भाव-गंभीर थे और जन-मानस को आकृष्ट करने केलिए उन्होंने गेय शैली को अपनाया।

---

१. प्राचीन मलयाल मातृककल, पहला भाग, प्रस्तावना अंश।

२. रामकाव्य, पृ. २२२.

रामायणम् चंपू :–

कण्णश्श रामायणम् तथा अध्यात्मरामायणण् की मध्यम कडी के रूप में पूनम् नंपूतिरि का रामायणम् चंपू आता है। इसकी रचना पन्द्रहवीं शती में हुई। साहित्यिक दृष्टि से चम्पू काव्य एक नया प्रयोग है और इसमें मणि-प्रवाल शैली अपनायी जाती है। संस्कृत मिश्रित मलयालम शैली का आदिम रूप इस काव्य में दर्शनीय है। राम कथा इसमें पाँच काण्डों में विभक्त है। रावण-जन्म से लेकर राम के स्वर्गारोहण तक की कथा इसमें वर्णित है। भोज की चंपू रामायण का कवि विशेष आभारी है।

अध्यात्मरामायणम् :–

भाषा तथा भाव दोनों दृष्टियों से तुंचत्तु रामानुजन् एषुत्तच्छन कृत अध्यात्म रामायण मलयालम राम-काव्य परंपरा में एक स्वर्णिम कृति है। कवि कुल गुरु एवं भक्तोत्तंस महाकवि ने मणिप्रवाल शैली का परिष्करण किया और एक सार्वदेशिक भाषा-शैली का आदर्श सामने रखा। एषुत्तच्छन कृत रामा-यण का केरल में वही स्थान है जो उत्तर भारत में तुलसी कृत रामचरित मानस का है। एषुत्तच्छन सोलहवीं–सत्रहवीं शती में जीवित रहे। वे आधु-निक मलयालम के जनक माने जाते हैं। वे भाषा-सुधारक एवं भावुक कवि थे। निम्न जाति में जन्मे इस महाकवि ने अपने आराध्य भगवान श्रीरामचंद्र जी के भक्तिरसामृत सिंधु में निमज्जित हो स्वयं अपने को हीं पुण्यपावन नहीं किया अपितु समस्त केरलीय जनता को भक्ति के जाह्नवीतोय में निमज्जित कर, उसके सारे सांसारिक कलुष को मिटा दिया।

संस्कृत की अध्यात्मरामायण का अनुवाद ही एषुत्तच्छन की रामायण है। पर ऐसे अनेक मार्मिक प्रसंग हैं जहाँ एषुत्तच्छन ने मौलिक उद्भावनाएँ प्रस्तुत की हैं। इस कारण यह रामायण एक स्वतंत्र एवं मौलिक कृति की प्रतीति कराती है। उनके राम आराध्य देवता हैं, साक्षात् ब्रह्म स्वरूप हैं, जिन्होंने धर्म की रक्षा के लिए भूतल पर अवतार ग्रहण किया है। तुंचन भक्ति मार्गी अवश्य हैं, किन्तु उनका भक्तिमार्ग ज्ञानमार्ग के प्रतिकूल नहीं, उसका पूरक मात्र है। अत: उन्हें ज्ञानी भक्त कहना समीचीन होगा। तुंचन भावुक एवं कल्पना-वैभव से युक्त कवि हैं। सीता-स्वयंवर के प्रसंग में जहाँ उनकी विशिष्ट भावुकता प्रकट होती है, वहाँ तारोपदेश एवं लक्ष्मणोपदेश के प्रसगों में उनका ज्ञानी रूप दर्शनीय है। तुंचन केवल ज्ञानी कवि नहीं, उनका

समाज-सुधारक रूप भी कम महत्व का नहीं है। स्वयं निम्न जाति में जन्म लेने के कारण वे उच्च वर्गीय समाज के दंभ एवं पाखंड से परिचित थे। इस कारण उन्होंने एक लोकादर्श की प्रतिष्ठा की, जिसका अनुसरण करके समाज कल्याण के पथ पर अग्रसर हो सकता था। शैली की दृष्टि से तुंचन कृत रामायण सर्वोपरि है। बिम्ब-विधान की प्रभविष्णुता, अनुपदगामी औचित्य-दीक्षा, शब्द-मैत्री एवं सरस अलंकार-योजना के कारण उनका काव्य मलयालम साहित्य-भण्डार की अक्षयनिधि है।

केरलवर्मा रामायणम् :-

राजा वीर केरल वर्मा की यह रामायण वाल्मीकि कृत रामायण का स्वतंत्र अनुवाद है। यह ग्रंथ उन्नसवीं शती का है। वैसे केरल वर्मा रचित पाताल रामायणम् का भी उल्लेख मिलता है, किन्तु प्रसिद्धि का कारण प्रथम कृति ही है। केरल वर्मा रामायण एक स्वतंत्र कृति नहीं है, वह वाल्मीकि रामायण का संक्षिप्त अनुवाद है। इसमें बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्य-काण्ड, किष्किन्धाकाण्ड और सुन्दरकाण्ड नामके पाँच काण्ड हैं। विद्वानों का विचार है कि युद्धकाण्ड और किसी कवि का लिखा हुआ है। जहाँ कवि ने मूल ग्रंथ का संक्षिप्त अनुवाद किया है, वहाँ सरसता लाने के साथ ही साथ कुछ मौलिक कल्पनाएँ भी प्रस्तुत की हैं। अयोध्या का सौन्दर्य वर्णन, राम के वियोग में अयोध्या को घेरे करुण रस का वर्णन, चित्रकूट में राजसभा आदि इसके परिचयात्मक प्रसंग हैं। कवि की अन्तर्दृष्टि का परिचयात्मक प्रसंग चित्रकूट की राजसभा है। जहाँ अन्य रामायणकारों ने पुरुषों के वार्तालाप से सतुष्टि पायी है, वहाँ स्त्री-मनोविज्ञान के सूक्ष्म पारखी केरलवर्मा यह जानते थे कि बहुत दिनों के वियोग के उपरांत कौसल्या सुमित्रा आदि नारियां सीता के सुख-दुख से परिचित होना चाहती थीं। कवि ने बडे व्यावहारिक ढंग से सीता-स्वयंवर की घटना पर उनका वार्तालाप प्रस्तुत किया है।

भाषा-शिल्प की दृष्टि से भी केरल वर्मा कृत रामायण का महत्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत पर कवि का एकाधिकार स्पष्ट झलकता है। उनकी भाषा इतनी ललित एवं प्रसन्न है कि सामान्य जनता की पहुँच की वस्तु है। उन्होंने शुद्ध द्राविडी छंद जैसे केका, काकली, अन्ननटा तथा द्रुतकाकली में काव्य रचना की है। शैली ओजपूर्ण एवं प्रभावोत्तेजक है। दुख की बात है कि केरलीय जनता में इस रामायण का पर्याप्त प्रचार नहीं हुआ है।

मलयालम के अन्य रामकाव्य

ऊपर मलयालम में उपलब्ध प्रमुख रामकाव्यों का सर्वेक्षण किया गया है, किन्तु उससे यह न समझना चाहिए कि इनके अतिरिक्त कोई रामकाव्य मलयालम में नहीं है। वास्तव में मलयालम में रामकाव्यों की एक लम्बी परम्परा है। उपर्युक्त काव्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य कृतियों का संक्षिप्त परिचय देना अप्रासंगिक नहीं होगा। अषकत्तु पद्मनाभ कुरुप विरचित रामचन्द्र विलास काव्य, वडक्कम्कूर राजराज वर्मा कृत रघुवीर विजयम्, पांङ्ङोट्टुण्णित्तिरी कृत उत्तररामायणम्, महाकवि कुमारनाशान् विरचित बालरामायणम् तथा चिन्ताविष्टयाय सीता, वल्लत्तोल कृत वाल्मीकि रामायण का अनुवाद तथा प्रसिद्ध कविता 'किळिकोञ्चल्', टी. के. रामन मेनन तथा वेण्णिक्कुलम गोपाल कुरुप के तुलसी रामायण के अनुवाद आदि इस दिशा में विशेष उल्लेख्य हैं।

अषकत्तु पद्मनाभ कुरुप राम के अनन्य भक्त थे और उनका रामचन्द्र-विलास काव्य भक्तिरस पूरित महाकाव्य है, जिसमें कवि ने अपने उपास्य भगवान श्रीरामचन्द्र जी का खुलकर यशोगान किया है। रघुवीर विजयम् एक पंडित कवि की कृति है और उसमें हृदयपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष का चमत्कार दिखाई देता है। फिर भी कवि में भगवान के प्रति चिर आस्था है और वह उनकी स्तुति करता हुआ नहीं अघाता है। पांङ्ङोट्टुण्णित्तिरी का उत्तररामचरितम् काव्य भवभूति के 'उत्तररामचरित' से पर्याप्त मात्रा में प्रभावित है और इसमें भी भवभूति के काव्य के समान राम के राज्याभिषेक के उपरांत की कथा वर्णित है।

राम कथा की परम्परा में आधुनिक मलयालम भाषा के कवि कुमारनाशान की देन अनुपम है। यह दूसरी बात है कि आशान तुंचन के समान कोई भक्त कवि नहीं थे। फिर भी भारतीय संस्कृति के प्रतीक राम के पावन चरित के प्रति उनका हृदय अत्यन्त श्रद्धालु था। उन्होंने वाल्मीकि रामायण के आधार पर बालकोचित काव्य शैली में बालरामायण की रचना की। आधुनिक मलयालम साहित्य में उनकी 'चिन्ताविष्टयाय सीता' का महत्वपूर्ण स्थान है। राम के द्वारा परित्यक्ता सीता के वियोग का मार्मिक प्रसंग यहाँ प्रस्तुत है। वाल्मीकि के आश्रम में रहती सीता के एक दिन के हृदयोद्गार ही इसके वर्ण्य हैं। अपने विगत जीवन की स्मृति में भूली बैठी सीताजी के हृदयोद्गारों को वाणी देने में आशान् अत्यन्त सफल हुए हैं।

सीताजी के मानस-पटल पर चलचित्र की भाँति राम के भावी अश्वमेघयज्ञ का प्रसंग अंकित होता है। वे कल्पना करती हैं कि वे वाल्मीकि के साथ यज्ञ-शाला में पहुँचती हैं और वहीं यज्ञ के लिए स्थापित अपनी ही स्वर्णिम मूर्ति को देखती हैं। आशान् का भावुक हृदय सीताजी के साथ तन्मय हो उनके मनो-व्यापारों का स्वाभाविक चित्र अंकित करता है। कहीं-कहीं सीताजी के विचार कुछ परुष से लगें, तो यह सोचकर शान्त होना चाहिए कि कवि की भावना में उद्भूत सीता कोई देवी-नारी नहीं, केवल मानवी हैं। यही कारण है कि सीताजी राम से अपने अपराधों के लिए क्षमा-याचना भी करती हैं।—

"क्षुभितेन्द्रिय ! ञान् भवानिलि—
न्नुपदिच्च कलंक रेखकल्
अभिमानिनियाँ स्वकान्तयिल्—
कृपयाल् देव ! भवान् क्षमिक्कुक।"

वास्तव में यह काव्य हृदयावर्जक एवं कारुणिक है और यह पाठक के हृदय पर अपना अमिट प्रभाव डालता है। कवि ने स्वभावोक्ति एवं अर्थान्तर-न्यास के द्वारा काव्य को रमणीय एवं चित्ताकर्षक बना दिया है।

मलयालम भाषा साहित्य में वल्लत्तोल का वही स्थान है जो हिन्दी में मैथिलीशरण गुप्त का है। उन्होंने आदि कवि वाल्मीकि विरचित रामायण का मलयालम में भाषान्तर कर रामायण-परम्परा को आगे बढ़ाने का स्तुत्य प्रयत्न किया। इसके अतिरिक्त उनकी 'किलिकोंचल्' कविता भी इस प्रकरण में उल्लेख्य है। इसका आधार रामायण ही है। त्रेतायुग के मिथिलादेश के राजप्रांगण में बाल-सुलभ चापल्य दिखाती सीताजी की ओर कवि पाठकों का ध्यान आकृष्ट करता है। फिर कवि सीताजी की बाल-लीलाओं का स्वाभाविक एवं अत्यन्त मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत करता है। वाल्मीकि के आश्रमवासी दो शुक वहाँ वृक्ष की शाखा पर आ बैठते हैं और वे रामायण के प्रसग गाते हैं। शुकों से यह सुनकर कि दशरथ-पुत्र राम उससे विवाह करेगा, बालिका सीता रुष्ट हो जाती है और माताजी के सामने शुकों के प्रति शिकायत करती है और पूछती है कि वाल्मीकि राम से मेरा विवाह क्यों कराना चाहते हैं। माता के मुँह से यह सुनकर कि लड़कियों के लिए विवाह-संस्कार अनिवार्य है, वह अबोध बालिका आग्रह करती है कि मेरा विवाह केवल माताजी के साथ ही हो—

कन्यक तीरमानं चेय्तु : मट्टारुं वे–
ण्टेन्नेयेन्नम्मतान् वेट्टाल् मति ।"[1]

कवि ने अबोध बालिका के निश्छल हृदय एवं अभिलाषा का कितना स्वाभाविक चित्र अंकित किया है । सीता जी के बाल-मनोविज्ञान का वर्णन करने में कवि को असाधारण सफलता प्राप्त हुई है ।

हिन्दी के पठन-पाठव एवं प्रचार–प्रसार के कारण केरल की जनता हिन्दी के प्रसिद्ध रामचरित मानस के संपर्क में आ सकी । मलयालम के इने-गिने व्यक्तियों ने रामचरित मानस का मलयालम में भाषान्तर करने का प्रयास किया, जिनमें टी. के. रामन मेनोन तथा वेण्णिकुलम गोपाल कुरुप ख्याति प्राप्त कर सके । वेण्णिकुलम् जी मलयालम के अनश्वर महाकवि हैं । स्वयं ही हृदयसंपन्न होने के कारण उन्हें रामचरित मानस के मार्मिक प्रसंगों को यथा विधि मलयालम में प्रस्तुत करने में आशातीत सफलता प्राप्त हुई । तुलसी के भक्त हृदय को समझकर उसको उसी रूप में आविष्कृत करना कोई सरल कार्य नहीं है । किन्तु वेण्णिकुलम् जी ने रामचरितमानस का पद्यानुवाद करते समय तुलसी के भावुक भक्त हृदय की रक्षा की । अनुवाद का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए केवल एक छंद उद्धृत है—

वर्णङ्ङळर्थ संघङ्ङळ्
छन्दोमाल रसङ्ङळुम्
मंगळङ्ङळुमुण्टाक्कुम्
वाणी विघ्नेश्वररे तोषाम्[2]

सचमुच उसकी यह 'तुलसीदास रामायणम्' उनका अनश्वर कीर्तिस्तंभ होगी ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि मलयालम में रामकथा की एक लम्बी परम्परा चली आ रही है । यहाँ के कवियों पर संस्कृत, हिन्दी तथा तमिल के रामकाव्यों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है । मूल ग्रन्थों का अनुवाद प्रस्तुत करते समय भी इन कवियों ने मौलिक उद्भावनाओं को प्रश्रय दिया है कि कुछ एक कृतियाँ मौलिक कृतियों की प्रतीति कराती हैं । निष्कर्ष यहीं निकलता है कि भक्त कवि किसी भी प्रांत या भाषा के क्यों न हों, उनका हृदय एक ही होता है और उनकी वाणी भावनात्मक एकता का सूत्र-धार होती है ।

१. साहित्य मंजरी, भाग-४, पृ. ४८.

२. वेण्णिकुलम् कृत भाषान्तर 'तुलसीदास रामायणम्', प. ३७.

तुंचत्तु रामानुजन् एषुत्तच्छन् कृत अध्यात्म रामायणम्

– डॉ० एन. पी. कुट्टन पिल्लै,

मध्यकालीन भारतीय साहित्य का आधार भक्ति है और भक्ति-चेतना ने दो युगांतरकारी पुरुष राम तथा कृष्ण के अवदानों को लेकर अपना विकास प्राप्त किया। इस भक्तिधारा ने समस्त भारतीय भाषाओं के साहित्य का आश्लेष किया और भक्ति की सुरसरिता साहित्य में प्रवाहित हुई। यही कारण है कि भारत के सुदूर दक्षिण में स्थित केरल प्रदेश का मध्यकालीन साहित्य भी भक्ति की पुनीत धारा से ओतप्रोत रहा। इस भक्ति साहित्य में रामकाव्यों का विशिष्ट स्थान है। चीरामन का रामचरितम् पाट्टु, नेय्याट्टिनकरा के कोवलम प्रदेश के अय्यंपिल्लै आशान का रामकथा पाट्टु, निरणम कवियों में से एक रामपणिक्कर की कण्णश्श रामायणम्, पूनम् नंपूतिरि का रामायण-चम्पू, एषुत्तच्छन की अध्यात्मरामायणम्, पषशि केरलवर्मा की केरलवर्मा रामायण, आदि मध्यकालीन रामकाव्यों में विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं। भक्तोत्तंस महाकवि तुंचत्तु एषुत्तच्छन की अध्यात्मरामायण समस्त रामकाव्यों की मुकुटमणि है और आज भी मलयालम रामकाव्यों के नाम लेते ही एषुत्तच्छन और उनकी रामायण हमारे सामने अपनी झाँकी दिखाती हैं। भाव तथा शिल्प दोनों दृष्टियों से एषुत्तच्छन की कृति युगांतरकारी है और उत्तर भारत में जैसे तुलसी के मानस का पठन-पाठन होता है वैसे केरल के घर-घर में इस रामायण का पारायण सुचारु रूप से होता आ रहा है।

तुंचन का जन्म सोलहवीं-सत्रहवीं शती में मलबार में हुआ। उनके समय केरल की सामाजिक व्यवस्था अस्तव्यस्त एवं शिथिल थी। देशी राजा पारस्परिक विद्रोह एवं कलह में अपना समय बिता रहे थे। विदेशी शक्तियाँ भी अपना आतंक जमा रही थीं। साहित्य में तमिल भाषा का आतंक था। अतः तुंचन को बड़ा भारी दायित्व उठाना पड़ा। एक ओर समाज को सुव्यव-

स्थित करने तथा जनता का मार्गदर्शन करने का दायित्व था तो दूसरी ओर मलयालम को तमिल के आतंक से मुक्त कर उसके सहज रूप में प्रतिष्ठित करना था। इस कारण तुंचन का ध्यान मुख्य रूप में मलयालम भाषा का रूप स्थिर करने की ओर गया। इसलिए तुंचन को मलयालम भाषा के जनक की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। उन्होंने अपनी भाषा को तमिल की अस्पष्टता एवं संस्कृत की दुरूहता से मुक्त किया। उनकी भाषा मणिप्रवाल शैली का प्रोज्वल उदाहरण है। उनकी भाषा शताब्दियों बाद आज भी आदर्श मानी जाती है। अतः यह कहा जा सकता है कि तुंचन मलयालम भाषा की वह मध्यम कडी है, जिसके आधार पर मलयालम के प्राचीन एवं नवीन रूप का दर्शन किया जा सकता है। वे उच्च कोटि के भक्त, कवि एवं दार्शनिक थे। अध्यात्मरामायणम्, महाभारत, हरिनाम संकीर्तन, तथा इरुपत्तिनालुवृत्तम् उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं, किन्तु उनकी ख्याति काआधारस्तंभ अध्यात्म रामायण ही है।

अध्यात्म रामायणम्

महाकवि तुंचन की अध्यात्मरामायणम् एक स्वतंत्र रचना नहीं है, वह संस्कृत की अध्यात्मरामायण का छायानुवाद मात्र है। इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि तुंचन में मौलिकता का अभाव है। उन्होंने अपनी रामायण के लिए कथावस्तु एवं घटनाओं का ढाँचा संस्कृत ग्रंथ से ग्रहण कर, उसमें नवीन उद्भावनाओं, कल्पनाओं को प्रश्रय देकर अपनी रामायण लिखी है, जिस कारण 'अध्यात्मरामायणम्' एक स्वतंत्र रचना-सी लगती है। कवि ने केरल की अतिप्रिय किलिप्पाट्टु शैली में यह ग्रंथ लिखा है। अर्थात् भक्त कवि ने उमा-महेश्वर संवाद रूप में प्राप्त रामकथा को शारिका के मुंह से कहलवाया है। बालकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक इसके छः काण्ड हैं और राम के राज्याभिषेक के साथ इसकी कथा समाप्त होती है। लोक प्रचलित रामकथा को आधार बनाकर भी एषुत्तच्छन ने अनेक प्रसंगों में अपनी मौलिक कल्पना एवं प्रतिभा का आभास दिया है। उनके राम पूर्ण पुरुषोत्तम, परात्पर ब्रह्म हैं और रामायण का प्रत्येक पात्र उनके विश्वातीत रूप से परिचित है। अपने यज्ञ की सफलता के लिए विश्वामित्र के द्वारा राम की याचना की जाने पर कुंठित दशरथ को वसिष्ठ समझाते हुए कहते हैं कि राम मानव नहीं हैं, वे आत्मा हैं, सदानंद हैं और पद्मसंभव की प्रार्थना स्वीकार करके साक्षात् महा-विष्णु ही राक्षस रावण का वध कर सुरों की रक्षा के लिए आपके पुत्र रूप में

अवतीर्ण हुए हैं। लक्ष्मण शेषनाग के अवतार हैं और भरत-शत्रुघ्न उनके शंख-चक्र हैं। योगमाया ही मिथिला में अयोनिजा सीता के रूप में प्रकट हुई है।[1] स्वयं शिवजी पार्वती को समझाते हैं कि श्रीरामजी परमात्मा, आनंदमूर्ति प्रकृति के कारणभूत पुरुष हैं। जगत की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय के कारण-भूत हैं। वे ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर स्वरूप हैं। वे अद्वय, अनाद्य, अजन्मा, अव्यय, सच्चिदानंद हैं। जो उन्हें मानव समझते हैं वे मायामोह से ग्रस्त अज्ञानी एवं मूढ हैं।[2] सीताजी स्वयं अपने को मूल प्रकृति बताती हैं जो अपने प्रियतम परमात्मा के सान्निध्य मात्र से सृष्टि करती हैं।[3] अहल्योद्धार–प्रसंग में अहल्या का शाप तथा राम के द्वारा उसके उद्धार का सविस्तार वर्णन करने के साथ ही कवि ने अहल्या के मुँह से राम का आध्यात्मिक रूप व्यक्त कर–वाया है। इस प्रकार केवट, वाल्मीकि, नारद, भरद्वाज और यहाँ तक कि रावण भी राम के मर्म से परिचित हैं। राम कौसल्याजी को अपने अवतार का उद्देश्य समझाते हुए कहते हैं कि दुर्मद रावण का संहार करने के लिए ब्रह्मा तथा शंकर की प्रार्थना के कारण मानववंश में आपकी संतान रूप में मैंने जन्म लिया।[4]

तुंचन की रामायण के अनुसार सीता की प्राप्ति के समय ही जनक को नारद ने यह समझाया था कि राम देवताओं के कार्य के लिए पृथ्वी पर अवतार ले चुके हैं और यह सीता साक्षात् योगमाया ही है जो मानुष देही बनकर पैदा हुई है। इसलिए सीता का विवाह राम के साथ करा देना चाहिए। अतः जनक का कथन है कि उन्होंने सीता के पाणिग्रहण के लिए धनुर्भंग की अनिवार्य शर्त इसलिए रखी कि वे जानते थे कि शिवधनुष को राम के सिवा और कोई तोड़ नहीं सकता। यही कारण है कि विवाहोपरांत जनक जी राम से मुक्ति दिलाने की याचना करते हैं। तुंचन ने सीता–राम विवाह

---

१. बालकाण्ड, पृ. १५–१६.

२. श्रीरामन् परमात्मा परमानंदमूर्ति पुरुषन् प्रकृतितन् कारणनेकन् परन्।
पुरुषोत्तमन् देवननंन्तनादि नाथन् गुरु कारुण्य मूर्ति परमन् परब्रह्मं।
जगदुद्भव स्थिति प्रलय कर्तावाय भगवान् विरिंचनारायण शिवात्मकन्।
बाल. पृ. ४.

३. ञान् तान् मूल प्रकृतियायतेटो। एन्नुटे पतियाय परमात्मावुतन्टे सन्निधि मात्रंकोण्टु ञानिवसृष्टिक्कुन्नु। वही. पृ. ५.

४. बालकाण्ड, पृ. १३.

के समय अपनी मंजुल कल्पना-शक्ति का परिचय दिया है, जबकि वे लिखते हैं कि सीताजी ने राम को पहले नेत्रोत्पल माला पहनायी और बाद में वरमाला अर्पित की—

स्वर्ण मालयुं धरिच्चादराल् मन्दमन्दमर्णोजनेत्रन् मुम्पिल् सत्रपं विनीतयाय्
वन्नुटन् नेत्रोत्पल मालयुमिट्टाळ् मुन्ने, पिन्नाले वरणार्थमालयुमिट्टीटिनाळ्।[1]

तुंचन की यह मौलिक कल्पना जहाँ उनकी भावुकता की द्योतक हैं, वहाँ स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक है। इसमें राम के रूप-सौन्दर्य को एक बार हृदयंगम् करने की सीता की व्यग्रता का चित्र सधी-तूलिका से अंकित है।

प्रस्तुत ग्रंथ में यह बताया गया है कि धनुर्भंग के साथ ही जनक ने दशरथ को विवाह का निमन्त्रण भेज दिया और उनके सान्निध्य में ही सीता को राम के हाथ में अर्पित किया। बारात के लौटते समय परशुराम आते हैं और परशुराम को देखकर दशरथ उनको साष्टांग प्रणाम करते हैं। तुलसीदास के मानस में अधिकतर वार्तालाप लक्ष्मण और परशुराम में होता है और इस प्रसंग में लक्ष्मण की धृष्टता दिखाई गयी है। किन्तु एषुत्तच्छन का भक्त कवि राम और लक्ष्मण के प्रति समान अनुरागी है और वह अपने लक्ष्मण को उद्दंड नहीं बना सका है। इधर लक्ष्मण को कुछ बोलने का अवसर ही नहीं मिलता। यहाँ सीधे परशुराम राम से कहतें हैं कि तुमने शिव-धनुष तोड़ डाला, अब मेरे हाथ का वैष्णव धनुष भी तोड़ो अन्यथा तुम सबको समाप्त कर दूंगा। परशुराम की इस क्रोध पूर्ण उक्ति से पृथ्वी कंपित हो उठी, सागर उमड़ पड़ा और पहाड़ थर थर काँपने लगे। समस्त दिशाएँ अंधकारमय हो गयीं। राम मंद मुस्कान के साथ कहने लगे कि प्रौढ महानुभाव बालकों से ऐसी बातें करें तो उन्हें सहारा कहाँ मिलेगा ? आप जरा धनुष दीजिए, संभव हो तो भंग करूंगा, अन्यथा क्रुद्ध न होइएगा। हाथ में धनुष उठाते ही राम की दीप्ति चौदहों भुवनों में फैल गयी और धनुष की प्रत्यंचा पर बाण चढ़ाये खड़े राम की परशुराम वन्दना करते हैं कि आप सृष्टि-स्थिति-संहार हेतु भगवान हैं। फिर अपना पूरा वृत्तान्त सुनाकर अपना तेज राम को अर्पित करते हैं।

अयोध्याकाण्ड का आरंभ राम के पास नारद के आगमन से होता है। नारद राम को देवताओं की रक्षा की प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाते हैं और राम अगले दिन ही वन जाने का वचन देते हैं। इस प्रकार कवि मंथरा तथा कैकेई

---

१. बालकाण्ड, पृ. २३.

को राम-वनगमन के निमित्त-मात्र सिद्ध करता है। राम के राज्याभिषेक की बात सुनकर कौसल्या दुर्गा के पास पहुँचकर पूजा करती है तथा कैकेई के द्वारा अनिष्ठ होने की आशंका भी करती है।

केवट के द्वारा राम को नाव पर चढ़ाने में असमंजस का भाव तुलसी ने चित्रित किया है। ऐसा कोई प्रसंग प्रस्तुत ग्रंथ में नहीं है। इसमें बताया गया है कि गुह राम से भेंट करता है तथा उन्हें अपने यहाँ ठहरने का निमन्त्रण भी देता है, किन्तु वनवास का व्रत लेने के कारण पुनः ग्राम में जाना निषिद्ध है, यह समझकर उसकी प्रार्थना को राम अस्वीकार करते हैं। राम गंगा पार करने के लिए नाव मांगते हैं तो केवट प्रसन्न हो उन्हें नाव पर चढ़ाता है और नदी पार पहुँचा देता है।

शूर्पणखा के कर्ण-नासिका छेदन के प्रसंग में तुंचन की मौलिकता राम के चरित्र को कलंकित होने से बचा देती है। वाल्मीकि, अध्यात्म रामायण-कार सभी ने राम पर यह कलंक आरोपित किया है। तुलसीदास जी ने राम के चरित्र को कलंकित करने से बचाने का व्यामोह तो अवश्य दिखाया, फिर भी वे इस कार्य में पूर्णतया सफल नहीं हो सके क्योंकि वहाँ उसके कर्ण-नासिका छेदन की राम लक्ष्मण को संकेत से अनुमति देते हैं। तुंचन के राम आदर्शो-ज्वल भगवान हैं, वे जानते हैं कि अनियंत्रित काम अपराध अवश्य है, किन्तु कामार्ता नारी को दंडित करना भी उचित नहीं है। इसलिए तुंचन के राम उसके प्रति उदार हैं, किन्तु सीता की ओर लपकती शूर्पणखा को रोककर तथा उसका अंग छेदन करके लक्ष्मण सीताजी की रक्षा करते हैं, जो वास्तव में लक्ष्मण का कर्तव्य है। इस प्रकार लक्ष्मण को कर्तव्य निभाने के लिए उसे दंडित करते दिखाकर उसके चरित्र की भी रक्षा करता है। वास्तव में वालि-वध राम के ईश्वरत्व केलिए कलंक है। ईश्वर समदर्शी है, उसमें वालि या सुग्रीव में भेद दृष्टि नहीं होनी चाहिए। इस बात से अवगत तुंचन वेदादर्श को प्रस्तुत कर वालि को जघन्य पापी सिद्ध करते हैं और ऐसे जघन्य अपराधी को दंडित करना धर्मधुरीण राम का धर्म है। इसलिए राम कहते हैं कि पुत्री, भगिनी, सहोदर-भार्या, पुत्र-वधू, माता इनमें कोई अन्तर नहीं है यही वेदों की उक्ति है। वेद-विरोधी आचरण करने वाले की हत्या करके धर्म की प्रतिष्ठा

करना मेरा कर्तव्य है ।[1]

राम से शत्रुता मोल लेने केलिए रावण इसलिए तैयार होता है कि वह जानता है कि भक्तवत्सल भगवान उसे मारने केलिए भूतल में अवतीर्ण हुए हैं और उनके हाथों मरने से वैकुंठ की प्राप्ति होती है । अगर राम से युद्ध करते हुए विजय पा सकें तो सदा राक्षस-राजा का पद प्राप्त होता रहेगा। अतः दोनों ओर से लाभ है । दूसरे अखिलेश रामभक्ति के कारण उसपर प्रसन्न नहीं होंगे, इसलिए विद्वेष बुद्धि से उन्हें प्राप्त किया जा सकता है ।[2] अत: रावण मन ही मन प्रसन्न होता है। तुंचन का रावण वाल्मीकि के रावण के समान आत्म प्रशंसा में व्यर्थ समय नहीं गंवाता, वह एक सच्चे अनुरागी के समान अपने तथा राम के अंतर को समझाकर सीता का हृदय-परिवर्तन करना चाहता है । उसका कथन है कि तुम्हारे पति दशरथसुत को बहुत ढूंढ़ने पर कोई कहीं देख पाता है और कभी-कभी वह भी संभव नहीं है । भला जिसके दर्शन मात्र की भी संभावना कम है, उसके पत्नीत्व में क्या आनंद रखा है । इसके बदले रावण अपना परिचय देता हुआ प्रार्थना करता है कि हे सुमुखि, सुनो, सारे संसार का नाथ असुरेश तुम्हारे चरण सरोजों का दास है। हे शोभनशीले, तुम मुझपर दया करो ।[3]

सीता को ले चलने केलिए रावण भिक्षु रूप में आनेवाला है, यह जानते हुए राम साक्षात् सीता को अग्नि में छिपा देते हैं और माया सीता को आश्रम में रहने देते हैं । फिर राम लक्ष्मण को उसके आगमन का संकेत देते हैं। इस काव्य में सौमित्ररेखा का उल्लेख नहीं है, यहाँ लक्ष्मण सीता की रक्षा का भार वनदेवियों को सौंपकर राम की खोज में निकल पड़ते हैं ।

---

१. पुत्रि भगिनि सहोदर आर्ययुम् पुत्र कलत्रवुं मातावुमेतुमे
भेदमिल्लल्लो वेदवाक्यमतु चेतसि मोहाल् परिग्रहिकुन्नवन्
पापिकळिल् वच्चुमेट्टं महापापि तापमर्वकितिनाले वरुमल्लो
मर्याद नीक्किनटकुन्नवरकळे शौर्यमेरु नृपात्मा निग्रहिच्चथ
धर्म स्थिति व न्तुं धरणियिल् निर्मलात्मा नी निरूपिक्कमानसे ।

किष्किंधाकाण्ड, पृ. ११६-१२०

२. वही, पृ. ९५.

३. श्रृणु सुमुखि ! तब चरणनलिनदासोम्यहम्, शोभनशीले प्रसीद प्रसीद मे ।

सुन्दरकाण्ड, पृ. १५०.

राम की खोज में निकले लक्ष्मण को देखकर राम सोचते हैं कि रावण के द्वारा मायासीता के अपहरण का रहस्य समझाये जाने पर रावणवध का कार्य असंभव होगा। इसलिए सच्ची बात को छिपाते हुए राम स्वयं सीता के विरह का अभिनय करते हैं। वास्तव में यह प्रसंग राम के चरित्र पर कलंक है। अग्रज को पिता-तुल्य समझकर उनके पीछे सर्वसंग परित्यागी बनकर वन वन भटकते अनुज को भ्रम में रखना राम के ईश्वरत्व में कलंक अवश्य है। कथा के विकास को स्वाभाविक बनाने केलिए कवि ने इस लांछन को रहने दिया।

एषुत्तच्छन ज्ञानी भक्त थे। उन्होंने अपने काव्य में ज्ञान एवं भक्ति की गंगा-यमुना का समन्वय किया है। उनके इस काव्य में दर्शन का प्रतिपादन है तो भक्ति - भेदों पर भी गंभीर विचार प्रस्तुत है। दार्शनिक दृष्टि से एषुत्तच्छन को अद्वैतवाद पूर्णतया स्वीकर है। यह दूसरी बात है कि उनपर सांख्यदर्शन का भी पर्याप्त प्रभाव है। अद्वैतवाद को अपनी मान्यता प्रदान करते हुए एषुत्तच्छन का स्पष्ट विचार है कि ब्रह्म नित्यानंदस्वरूप, निराकुल, सत्यस्वरूप, चिन्मय, सर्वव्यापी, उपाधिरहित, अव्यय, अजन्मा एवं अखिलेश्वर है। परमात्मा रूपी बिंब का प्रतिबिंब ही जीवात्मा है।[1] यह प्रतिबिंब तेजोमय माया में ही प्रतिबिंबित होता है। यह प्रतिबिंब अवास्तविक है। साक्षात् बिंब निश्चल है और गुरु प्रसाद से तत्वमस्यादि महावाक्यों के ज्ञान से जीवात्मा ज्ञानी बनता है और ब्रह्मरूप को प्राप्त करता है। यह ब्रह्म समस्त जगत की आत्मा है। अज्ञान से उत्पन्न षड्विकार ब्रह्म में नहीं हैं क्यों कि ब्रह्म ज्ञानस्वरूप है। वह पूर्ण, निर्विकार एवं परिणामरहित है। यह जगत् भगवान की माया शक्ति है। अग्नि में धूप या पानी में फेन के समान परब्रह्म की यह माया विचित्र है।[2] अगस्त्य राम से कहते हैं कि आप सृष्टि पूर्व अकेले आनंद स्वरूप थे, लोक कारण भगवान तब विकल्पोपाधि रहित थे।

---

१. परमात्मावाकुन्न बिंबत्तिन् प्रतिबिंबं परिचिल् काणुन्नतु जीवात्मावरिकटो।

बालकाण्ड, पृ. ७.

२. वह्नियिल् धूमपोले वारियिल् नुरपोले निन्नुटे महामायावैभवं चित्रं चित्रं।

वही, पृ. २८.

जिस समय सृष्टि की इच्छा हुई तब माया के वशीभूत हुए ।[1] अपनी शक्ति प्रकृति रूपी महामाया के आवरण में अपने को आवृत कर तद्गुणों का अनुसरण करते हैं ।[2] यही माया देवी मूल प्रकृति कहलाती है । इस माया के दो भेद हैं–विद्यामाया तथा अविद्यामाया, निवृत्ति निरत जीव विद्यामाया के अधीन हैं और वे वेदान्त वाक्यार्थों को समझकर समचित्त हो भगवत् चरणों में निरत रहते हैं । अविद्या माया अज्ञान से उद्भूत एवं प्रवृत्ति कामी है । इस माया के वश में पड़े जीव नित्य संसारी कहलाते हैं । देहादि वस्तुओं में आत्मवत् बोध ही इस माया का कारण है और इसी से मायिक संबंधवाला संसार उत्पन्न होता है । यही स्थूल-सूक्ष्मादि भेदों की कल्पना करती है । अविद्या माया से महत्तत्व में अहंकार उत्पन्न होता है। महत्तत्व, अहंकार और संसार ही सात्विक राजस तथा तामस गुणों में परिवर्तित होते हैं । सारांश यह कि 'मैं ही आत्मा हूँ' का भाव विद्या माया है । और देहोऽहम् का ज्ञान अविद्या है[3] संसार का कारण अविद्या है और ससार विनाशकारी अविद्या है । भगवान के नाम-स्मरण में निरत भक्त को यह अविद्या माया अपने बंधन में नहीं बांधती ।

मायामय और परिणामशील काया विकारशील है । यही काया सुख दुःखादि की भोक्ता है । यह भोग सब क्षणिक है, जीवन भी क्षणभंगुर है । माया-सागर में डूबे रहने से जीव इस बात से अवगत नहीं है । काम-क्रोधादि विकार शत्रु हैं और मुक्ति में बाधक हैं । रूपकात्मक भाषा में एषुत्तच्छन समझाते हैं कि क्रोध यम है, तृष्णा वैतरणी है, संतोष ही नंदनवन है और शान्ति ही काम सुरभि है ।[4] कर्म को परब्रह्म में समर्पित कर निष्काम कर्म

---

१. बुद्धिजातकलाय वृत्तिकल् गुणत्रयं नित्यमंशिच्चु जाग्रल् स्वप्नवुं सुषुप्तियुं । इवट्टिनेल्लांसाक्षियाय चिन्मयन् भवान् निवृत्तन् नित्यनेकनव्ययनल्लो नाथन् । यातोरु कालं सृष्टि चेय्वानिच्छिच्चु भवान् मोदमोटप्पोलंगीकरिच्चु मायतन्ने ! — अरण्यकाण्ड, पृ. ८४.

२. वही

३. अयोध्याकाण्ड, पृ. ४६.

४. क्रोधमल्लो यमनायतु निर्णयं वैतरण्याख्ययाकुन्नतु तृष्णयुं
सन्तोषमाकुन्नतु चन्दनवनं सन्ततं शान्तिये कामसुरभि केळ् ।

अयोध्याकाण्ड, पृ. ४६.

ही मनुष्य केलिए श्रेयस्कर है। सुख-दुख पूर्वजन्म का फल है। एषुत्तच्छन का आग्रह है कि भोग की कांक्षा नहीं करनी चाहिए और विधिवत् भोग की उपेक्षा भी नहीं होनी चाहिए। कर्म के कारण ही जीव कालचक्र में पड़ता है। किन्तु मृत्यु आत्मा का अन्त नहीं है, जीर्ण वस्त्र त्यागकर नये वस्त्र वरण करने के समान जीर्ण शरीर त्यागकर नवशोभायुक्त नवदेह को धारण करना ही मृत्यु है।[1] तारा को उपदेश देते हुए राम देह की अनित्यता एवं आत्मा की चिरंतनता पर प्रकाश डालते हैं। पंचभूतात्मक देह जड है, रक्त--मज्जा–मांस मात्र है। वह निर्जीव काष्ठ तुल्य है, किन्तु आत्मा सजीव एवं निरामय है। तारा के प्रश्न करने पर कि जड़ शरीर को सुख-दुःख कैसे हो सकते हैं श्रीरामजी संदेह निवृत्ति करते हुए उसे समझाते हैं कि देहेन्द्रिय संबंधी अहंकार एवं भेद-भाव से संवलित जीवात्मा को अपने अविवेक के कारण संसार में रहना पड़ता है। संसार राग-द्वेषमय है और आत्मा स्वलिंग मन को अपनाकर तद्गुणों के वशीभूत हो जाती है।[2]

एषुत्तच्छन ने मुक्ति के संबंध में भी विचार किया है। अपने कार्य कारण संबंधों के साथ जीव का आत्मा में विलयन ही मुक्ति है। इस लय से पृथक् आत्मा की स्थिति है। यह आत्मा स्वयं ब्रह्म है। ज्ञान विज्ञान वैराग्य सहित आनंदमय कैवल्य स्वरूप को पहचानने वाला जगत में कोई नहीं है। भक्ति से ही यह कैवल्य दशा प्राप्त हो सकती है। भक्तों के सामने यह आत्मा खूब प्रकाशित होती है।[3]

एषुत्तच्छन ज्ञानी एवं भक्त कवि थे। कुछ विद्वानों का मत है कि उन्होंने कैवल्यावस्था की प्राप्ति के लिए भक्ति को साधक माना है। बात तो ठीक ही है क्योंकि उन्होंने अपनी रामायण में स्थान–स्थान पर भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन किया है। और यह बताया है कि भक्ति से जगन्मुक्ति प्राप्त होती है। किन्तु गहराई से अवलोकन करने पर स्पष्ट विदित होगा कि एषुत्तच्छन शंकर-परम्परा के कवि थे। शंकराचार्य ने मुक्ति के लिए ज्ञान की आवश्यकता मानी थी। एषुत्तच्छन ने कई स्थलों पर यह स्पष्ट बताया है कि मोक्ष ज्ञानाश्रित है। सच्चे गुरु के प्रसाद से अज्ञान दूर होता है और भगवत्

---

१. अयोध्याकाण्ड पृ. ६६.

२. किष्किन्धाकाण्ड, तारोपदेश, पृ. १२९.

३. अरण्यकाण्ड, पृ. ८७.

ज्ञान की प्राप्ति होती है। तब भगवत् कृपा से कर्मबंधन से मुक्ति और चिन्मय चरणों में लयता संभव होती है।[1] आगे वे बताते हैं कि भगवद्कथा तथा नाम श्रवण से धीरे-धीरे भक्ति मन में उत्पन्न होती है, इस भक्ति के बढ़ने से भगवत् बोध मन में बढ़ता है। भक्ति के बढ़ने से तत्वज्ञान का उदय और उससे मुक्ति प्राप्त होती है।[2] पंचवटी में रहते हुए एक बार लक्ष्मण भगवान से मुक्ति के संबंध में जिज्ञासा प्रकट करते हैं तो भगवान श्रीराम उनको समझाते हैं कि भक्ति के निम्न लिखित साधन हैं —

(१) मान, अहंकार, काम, क्रोध सब को मन से त्यागना तथा पर-निन्दा को समबुद्धि से सुनना

(२) चित्त-शुद्धि तथा देह-शुद्धि के साथ भक्ति भाव से गुरु-सेवा करना

(३) नित्य सत्कर्मों में निरत हो सत्य का आश्रय लेकर आनंद का अनुभव करना

(४) मन, वचन, कर्म पर नियंत्रण करना तथा मन से इंद्रियासक्ति को छोड़ देना

(५) सर्वात्मभाव से मन को ईश्वर पर अर्पित करना

(६) पुत्र-कलत्रादि के प्रति अनासक्ति

(७) इष्टानिष्ट को समबुद्धि से देखना और स्वच्छ स्थान पर विरक्त भाव से रहना

(८) प्राकृत जनों का सहवास छोड़कर एकांत में परमात्म-ज्ञान में तन्मय रहना

---

१. त्वलं ज्ञान परन्मारा मानुष जनङ्ङळ्कुळ्ळज्ञानं नीक्कुवोरु सद्गुरु लभिच्चीटुं। सद्गुरुवरङ्कल् निन्नम्पोट् वाक्यज्ञानमुळ्कांपिल् उदिच्चीटुं त्वल्प्रसादत्ताल-प्पोळ्। कर्मबधत्तिङ्कल् निन्नाशु वेरपेट्टु भवचिन्मयपदत्तिङ्कना-हन्त लयिच्चीटुं। बालकाण्ड, पृ. २८.

२ त्वल्कथा नाम श्रवण दिक्कोण्टुटनुळेकाम्पिलु एटायिवरुं त्रमाल् भक्तियुं। त्वत्पादपङ्कज भक्तिमुपुक्कुम्पोळ त्वल्बोधवुं मनक्काम्पिलुदिच्चीटुं। भक्ति मूपत्तुतत्वज्ञानमुण्टायीटुमिल्ल संशयं। अयोध्याकाण्ड, पृ. ३३.

(९) वेदान्त वाक्यार्थों का अवलोकन करना और वैदिक कर्मों को आत्मा में समर्पित करना ।

उपर्युक्त बातों का निष्ठापूर्वक अनुसरण करने पर मन में ज्ञान उत्पन्न होता है, जिससे मन विकल्प रहित होता है । भगवत् भक्तों की सगति एवं उनकी सेवा, व्रतानुष्ठान, पूजा, वंदना, दास्य, श्रवण, कीर्तन आदि भी भगवत् भक्ति के साधन हैं । यह भक्ति पाने पर संसार में कुछ और पाने की अभिलाषा नहीं रहती क्यों कि भक्त ज्ञान–वैराग्य स्थिति को पाकर मुक्ति पाता है ।[1] तात्पर्य यह कि एषुत्तच्छन भक्ति को ज्ञानप्रद तथा ज्ञान को मोक्षप्रद मानते हैं । यही नहीं भगवान राम शबरी को उपदेश देते हुए समझाते हैं कि तीर्थ–स्नान, तप, वेदाध्ययन, यागादि कर्मों से भगवत् प्राप्ति नहीं होती । केवल भक्ति ही ईश्वर प्राप्ति का सहायक है । वे स्पष्ट करते हैं कि प्रेम लक्षणा भक्ति मुक्ति-साधन है क्यों कि इससे तत्व ज्ञानानुभूति होती है ।[2] इससे स्पष्ट है कि एषुत्तच्छन की भक्ति भी ज्ञानमय है और ज्ञान से वे मुक्ति की सिद्धि स्वीकार करते हैं ।

एषुत्तच्छन की रामायण व्यक्तिगत साधना के साथ लोकधर्म का उज्ज्वल आदर्श प्रस्तुत करती है । दोनों का समन्वय इस कृति की श्रेष्टता का कारण है । एषुत्तच्छन जनवादी कवि हैं और उनका दृष्टिकोण लोकधर्म पर केन्द्रित है । उनकी समन्वय भावना कर्म, ज्ञान तथा उपासना, व्यक्ति धर्म तथा लोकधर्म, जप तप ध्यान सब में झलकती है । उनके राम लोकसंग्रह की भावना से भूमि पर अवतार लेते हैं और दुष्टों का संहार करके शिष्ट जनों का उद्धार करते हैं ।

एषुत्तच्छन की रामायण का कलापक्ष भी सशक्त है । परंपरा से चली आती तमिल मिश्रित मलयालम के स्थान पर मलयालम तथा संस्कृत मिश्रित

---

३. अरण्यकाण्ड, लक्ष्मणोपदेश, पृ. ८६–८८.

४. वही, पृ. १०८–१०९.

मणि-प्रवाल शैली का बीजारोपण एषुत्तच्छन की इस कृति में हुआ था। इस प्रकार एक नवीन शैली के जन्मदाता होने का गौरव उन्हें प्राप्त है। 'समस्त कर्मार्पणं भवति करोमि ज्ञान् समस्तपराधं क्षम स्वजगल्पते', 'उत्तिष्ठोत्तिष्ठ ब्रह्मन् तुष्टोहं तपत्तले सिद्धिच्चु सेवाफलं' आदि इसी नवीन शैली के सुन्दर उदाहरण हैं। साथ ही प्राचीन मलयालम रूप भी देखा जा सकता है। विशेष कर क्रिया रूपों में प्राचीनता वर्तमान है। एषुत्तच्छन की सर्वतोमुखी प्रतिभा ने मलयालम में प्रचलित समस्त काव्य-पद्धतियों को नवीनता के साँचे में ढाल दिया। अध्यात्मरामायण की शैली नया चमत्कार लेकर आती है। परंपरागत शैली को छोड़कर 'किलिप्पाट्टु' शैली का प्रादुर्भाव मलयालम में एषुत्तच्छन की नवीन देन है। यह बड़ा साहसिक कार्य था, जो केवल भावुक कवि एषुत्तच्छन ही कर सकते थे। एषुत्तच्छन का शब्दानुप्रास एव यमक अलकार के प्रति विशेष लगाव लक्षित होता है। वैसे ही उपमा की सृष्टि में वे सिद्ध कलाकार हैं। केवल एक उदाहरण द्रष्टव्य है। राम ने शिवधनुष का भंजन किया। मेघ गर्जन के समान धनुष भंग का रव सुनकर राजाओं को उरगों के समान चौंक उठते तथा मैथिली को मयूरनी के समान मन ही मन नाचते बताकर कवि ने सुन्दर उपमा की योजना की है। धनुष के टूटने के रव को मेघ गर्जन, राजाओं को उरग तथा मैथिली को मयूरनी के रूप में कल्पित करना एषुत्तच्छन के कल्पना-चातुर्य का द्योतक है।[1] उपमाश्रित दार्शनिक उद्भावना भी कम महत्व पूर्ण नहीं है। दक्षिण की ओर विपिन में प्रवेश करते हुए राम लक्ष्मण को समझाते हैं कि आगे आगे लक्ष्मण, उनके पीछे सीता और फिर राम प्रस्थान करें। इस प्रकार लक्ष्मण तथा राम के मध्य सीता को जीवात्मा तथा परमात्मा के मध्यस्थित महामाया का उपमान जहाँ काव्यात्मक अभिव्यंजना में चारुता लाता है, वहाँ दार्शनिक तत्व को सहज सवेद्य भी बनाता है।[2]

---

१. इटिवेट्टीटुं वण्णं विल्मुरिञ्ञोच्च केट्टु नट्टुङ्ङि: राजाक्कन्मारुरगङ्ङळे पोले।
मैथिली मयिल्पेट पोले सन्तोषं पूण्टाळ् कौतुकमुण्टायवन्नु चेतसि कौशिकनुं।
बालकाण्ड, सीतास्वयंवर, पृ. २३.

२. जीवात्मा परमात्माक्कळ्कु मध्यस्थयाकुं देवियां महामायाशक्तियेन्नतु पोले।
अरण्यकाण्ड, पृ. ७७.

निष्कर्ष यह कि भक्तोत्तंस महाकवि एषत्तच्छन ने ही मलयालम भाषा में राम भक्ति की पीयूष धारा बहायी। उनकी कृति अध्यात्म रामायण भाव पक्ष एवं शिल्प पक्ष दोनों दृष्टियों से मलयालम राम-काव्य परंपरा में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। उन्होंने संस्कृत ग्रथों में प्राप्त रामकथा का आश्रय लेकर उसमें साकार भक्ति एवं ज्ञान-वैराग्य को मिलाकर अध्यात्म रामायण का प्रासाद खड़ा कर दिया है। कथा वस्तु के ढाँचे में तथा दार्शनिक चिन्तन में एषुत्तच्छन की मौलिकता का दावा भले ही न कर सकें, किन्तु परंपराश्रित रामकथा को ज्ञान-भक्ति के गंग -यमुना सगमतीर्थ के रूप में जन-मानस में अंकित कर, उसे राममय बनाने में उनका योगदान असंदिग्ध है। यही एषुत्तच्छन का महत्व है और यही कैरली को उनकी अनुपम देन है।

लेखक--परिचय

श्री विजयवीर विद्यालंकार :–

जन्म: १३ जुलाई १९४४, जन्म: स्थान आंध्र प्रदेश; मातृभाषा तेलुगु; शिक्षा: गुरुकुल कांगडी से विद्यालंकार; उस्मानिया विश्व–विद्यालय से हिन्दी तथा संस्कृत में एम. ए., 'हिन्दी में रस सिद्धांत विवेचन : आधुनिक काल' पर शोधकार्य संलग्न हैं। कविता तथा निबंध-लेखन में विशेष अभिरुचि। 'आर्य जीवन' मासिक का सम्पादन, वैदिक विषयों पर सामयिक पत्र–पत्रिकाओं में संस्कृत तथा हिन्दी में लेखन कार्य। पता : प्राध्यापक, हिन्दी प्राच्य महाविद्यालय, नारायण–गूडा, हैदराबाद।

डॉ० भीमसेन निर्मल :–

जन्म : ३०-११–१९३०; जन्म स्थान : आंध्र प्रदेश; मातृ-भाषा : तेलुगु; शिक्षा : उस्मानिया विश्वविद्यालय से हिन्दी तथा तेलुगु में एम. ए; 'आन्ध्र के हिन्दी नाटककार पुरुषोत्तम कवि' शोध–प्रबन्ध पर उस्मानिया विश्वविद्यालय से पीएच. डी; शोध-प्रबंध उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत तथा विष्णु प्रभाकरजी कृत 'मेरा जीवन ही मेरा संदेश है' के सफल तेलुगु अनुवाद पर आन्ध्र प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत; केन्द्रीय निदेशालय से प्रकाशित त्रिभाषा कोष, अनुवाद (दिल्ली), भारतीय शिक्षा तथा वाणी सरोवर (लखनऊ) के संपादक सदस्य; समालोचना, अनुवाद एवं भाषाओं के आदान–प्रदान में विशेष अभिरुचि; प्रकाशित रचनाएँ : कवि श्री माला, घाट के देवता, रंगनाथ रामायण (नागरी लिप्यंतरण सहित अनुवाद) आदि।

पता : रीडर, हिन्दी–विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद।

डॉ० सीएच. रामुलु :–

जन्म: ९–११–१९४०; जन्मस्थान : आन्ध्र प्रदेश; मातृभाषा : तेलुगु; शिक्षा : एम· ए; बी· एड· (उस्मानिया विश्वविद्यालय); 'सूर और पोतन्ना के काव्य में भक्तितत्व' शीर्षक शोध- प्रबंध पर उस्मानिया विश्वविद्यालय से पीएच· डी· की उपाधि। आलोचना, कविता और कहानी–लेखन में विशेष अभिरुचि। रचना : तुलसी और पोतना की समन्वय साधना (प्रकाश्य); पता : अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, लालबहादुर कालेज, वरंगल, आं. प्र.।

श्री बी. सायिलु :–

जन्म : २–११–१९३६; जन्मस्थान : आन्ध्र प्रदेश; मातृ–भाषा : तेलुगु; उस्मानिया विश्वविद्यालय से एम· ए; एम· एड्; वर्तमान में 'हिन्दी और तेलुगु रामकाव्य परम्परा : साकेत और रामायण कल्पवृक्ष का तुलनात्मक अध्ययन' पर शोधकार्य में लगे हुए हैं। अभिरुचि : अनुवाद में। कल्याण, गोलकोण्डा पत्रिका, आन्ध्रप्रभा आदि में कुछ अनूदित लेख प्रकाशित; 'हिन्दी भाषा शिक्षण' प्रकाशित पुस्तक। पता : प्राध्यापक, सरकारी प्रशिक्षण महाविद्यालय, मासब टैंक, हैदराबाद।

श्रीमती वाई. लक्ष्मीबाई :–

जन्म : १०–७–१९३२; जन्मस्थान : आन्ध्र प्रदेश; मातृ–भाषा : तेलुगु; शिक्षा : उस्मानिया विश्वविद्यालय से एम· ए; बी· एड्; 'हिन्दी तथा तेलुगु लोकगीतों में नारी भावना' पर शोधकार्य में संलग्न। विशेष अभिरुचि : अनुवाद तथा लोकगीत में; फुटकल लेख सामयिक पत्रिकाओं में प्रकाशित। पता : १–१–३३६/८४, चिक्कड–पल्ली, हैदराबाद–५०००२०।

डॉ० चल्ला राधाकृष्ण शर्मा :–

जन्म : ६- १–१९२९; आन्ध्र प्रदेश। मातृभाषा : तेलुगु; शिक्षा : मद्रास विश्वविद्यालय से एम ए; 'तेलुगु साहित्य पर तमिल का प्रभाव' शोध प्रबंध पर एम· लिट्· तथा 'तमिल और तेलुगु में रामायण : एक तुलनात्मक अध्ययन' पर पीएच· डी· (मद्रास विश्व–

विद्यालय)। रचनाएँ: कई सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में फुटकल रचनाएँ प्रकाशित। लगभग बीस पुस्तकें प्रकाशित, जिनमें से कुछ आन्ध्र तथा तमिलनाडु सरकारों द्वारा पुरस्कृत। पताः क्षेत्रीय सचिव, साहित्य अकादमी, मद्रास-६।

डॉ० वाई. नागेश्वर राव :-

जन्म : आन्ध्र प्रदेश; मातृभाषा : तेलुगु; शिक्षा : एम. ए; बी. ओ. एल. (उस्मानिया विश्वविद्यालय); 'तेलुगु तथा हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा' शीर्षक शोध-प्रबंध उस्मानिया विश्वविद्यालय की पीएच. डी. उपाधि के लिए प्रस्तुत कर चुके हैं। विशेष अभिरुचि : साहित्य तथा वैद्यकशास्त्र।
पता : १-१-२८७/१४, बापूनगर, चिक्कडपल्ली, हैदराबाद-५०००२०

डॉ० चन्द्रकान्त मुदलियार :-

जन्म : तमिलनाडु; मातृभाषा : तमिल; शिक्षा : एम. ए (संस्कृत); एम. ए (हिन्दी); पीएच. डी; हिन्दी तथा संस्कृत के विद्वान लेखक। रचना : तमिल तथा हिन्दी का भक्ति साहित्य (शोध प्रबंध); भारत सरकार के गृहमंत्रालय की हिन्दी शिक्षण-योजना के दक्षिण मंडल के क्षेत्रीय अधिकारी के पद पर वर्षों से कार्यरत रहे।

डॉ० एन. एस. दक्षिणामूर्ति :-

जन्म : १५-३-१९३४, आन्ध्र प्रान्त; मातृभाषा : तेलुगु; शिक्षा : एम. ए; पीएच. डी; हिन्दी तथा तेलुगु भाषा के अच्छे विद्वान; कई अनूदित एवं मौलिक लेख अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। हिन्दी तथा तेलुगु कृष्णकाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन (शोध प्रबंध), हिन्दी तथा तेलुगु कहावतों का तुलनात्मक अध्ययन, प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। वर्तमान में मैसूर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक पद पर कार्यरत हैं। पता : अनंत श्री, नंबर १०, एयिटीन्त क्रॉस, जयानगर, मैसूर-९।

डॉ. एम. एस. कृष्णमूर्ति : :-

जन्म : कर्णाटक राज्य; मातृभाषा : कन्नड; शिक्षा : एम. ए. (कन्नड़) मैसूर विश्वविद्यालय ; एम. ए. (हिन्दी-बनारस), 'हिन्दी और कन्नड़ साहित्य की प्रमुख धाराओं का तुलनात्मक अध्ययन (१९०० तक),

शीर्षक शोध-प्रबंध पर मैसूर विश्वविद्यालय से पीएच. डी.। अब तक लगभग २० पुस्तकें प्रकाशित। समीक्षा, उपन्यास तथा कहानी-लेखन। 'अपराजित' तथा 'राग कानडा' उपन्यास हैं। 'अपराजित' केन्द्र सरकार से पुरस्कृत। अनूदित पुस्तकों में 'बाणभट्ट की आत्मकथा' 'मृगनयनी' तथा 'सूरज का सातवाँ घोडा' प्रसिद्ध हैं।

पता: रीडर, हिन्दी विभाग, मैसूर विश्वविद्यालय।

श्री. पी. आर. भास्करन नायर :–

जन्म: १६–६–१६२५, जन्मस्थान: केरल। मातृभाषा: मलयालम; शिक्षा: बनारस विश्वविद्यालय से एम. ए; सन् १६५० से १६६२ तक सनातन धर्म कालेज, केरल में प्राध्यापक। सन् १६६२ से भारत सरकार के शिक्षा-मंत्रालय के क्षेत्रीय अधिकारी के पद पर कार्यरत। आकाशवाणी, मद्रास से कई आलोचनात्मक लेख प्रसारित। पता: क्षेत्रीय अधिकारी, शास्त्री भवन, मद्रास–६।

डॉ. एन. पी. कुट्टन पिल्लै :–

जन्म: २६–८–१६३५. केरल प्रान्त; मातृभाषा: मलयालम; शिक्षा: 'सुमित्रानंदन पंत के काव्य में बिम्ब-योजना' शीर्षक शोध-प्रबंध पर उस्मानिया विश्वविद्यालय से पीएच. डी.। अभिरुचि: समीक्षा, काव्यानुशीलन तथा अनुवाद कार्य। साप्ताहिक-हिन्दुस्तान, प्रकाशित मन, राष्ट्र सेवक, अजन्ता आदि कई पत्रिकाओं में १०० से अधिक समीक्षात्मक निबंध प्रकाशित; चौदह पुस्तकें प्रकाशित जिनमें 'पंत: छायावादी व्यक्तित्व और कृतित्व' तथा 'पंत-काव्य में बिम्ब-योजना' विशेष महत्व पूर्ण हैं। पता: ५-१-५८२, त्रूप बाजार, हैदराबाद-५०००१।

––:०:––

दक्षिणांचलीय साहित्य समिति,

एक सर्वेक्षण

दक्षिणांचलीय साहित्य समिति आंध्र प्रदेश सोसायटी - एक्ट के अन्तर्गत पंजीकृत संस्था है। १४ अक्तूबर १९७२ को इसकी स्थापना हुई। तेलुगु, तमिल, मलयालम एवं कन्नड भाषाभाषी हिन्दी लेखकों की सृजनात्मक प्रतिभा को प्रोत्साहित करने तथा उनकी रचनाओं के प्रकाशन एवं वितरण की समुचित व्यवस्था करने के संकल्प को लेकर इसकी स्थापना हुई। दक्षिण भारत भर के लगभग पचास से अधिक स्नातकोत्तर उपाधिधारी जो सृजनात्मक अभिरुचि रखते हैं, इसके सदस्य हैं।

हिन्दी की अत्याधुनिक गतिविधियों से सदस्यों को अवगत कराने तथा दक्षिणी साहित्य और हिन्दी के तुलनात्मक अध्ययन को प्रोत्साहित करने और इस प्रकार भारत की भावनात्मक एकता सुदृढ करने के उद्देश्य से प्रेरित हो, समिति प्रतिमास साहित्यिक गोष्ठियों का आयोजन करती आ रही है, जिसमें गण्यमान्य विद्वानों का निबंध-वाचन तथा साहित्यिक परिचर्चा हुआ करती है।

गत वर्ष निम्न विषयों पर निबंध - वाचन हुए –

१. श्री एम.बी.वी.आई आर शर्मा, एम. ए.–हिन्दी शतक साहित्य

२. श्री बी. सायिलु, एम. ए; एम-एड्.–रामायण कल्पवृक्ष : एक परिशीलन

३. श्री पी. चिन्नप्पा, एम. ए; एम-एड्–संत बसवेश्वर तथा कबीर का सामाजिक दर्शन

४. श्री रंगय्या, एम. ए; बी. एड्.–तेलुगु की आधुनिक काव्य प्रवृत्तियाँ

५. श्रीमती वाई. लक्ष्मीबाई–तेलुगु लोकगीतों में रामायण

६. डॉ० सीएच. रामुलु–तुलसी तथा पोतन्ना की समन्वय साधना

७. डॉ० एन. पी. कुट्टन पिल्लै–कामायनी तथा उर्वशी : एक तुलनात्मक अध्ययन

८. श्री टी. मोहनसिंह, एम. ए.–अत्याधुनिक उपन्यास : वस्तु एवं शिल्प

९. श्री विजयवीर विद्यालंकार–रामायण का मूलस्रोत

दक्षिणांचलीय साहित्य समिति उत्तर दक्षिण के मध्य एक सेतु है। अहिन्दी भाषा-भाषी हिन्दी विद्वान हिन्दी साहित्य की विविध उपलब्धियों को समय-समय पर प्रान्तीय भाषाओं में अनुवाद द्वारा लाने में प्रयत्नशील हैं और यह कार्य उत्तर - दक्षिण की भावनात्मक एकता को प्रोत्साहित करेगा। किन्तु दक्षिण की महानतम उपलब्धियों को हिन्दी-प्रदेश के लिए अवगत करा देने की ओर अब तक संतोषजनक कार्य नहीं हुआ। अतः समिति ने यह आवश्यक समझा कि इस ओर विशेष प्रयत्नशील हो। इसके लिए समिति ने दक्षिणी भाषाओं की श्रेष्ठतम कहानियों, उपन्यासों को हिन्दी में प्रकाशित करने का संकल्प किया, किन्तु धनराशि की कमी समिति के मार्ग में बाधक बन खड़ी है। केन्द्र सरकार तथा प्रांतीय सरकार का सहयोग प्राप्त होने पर समिति के ये स्वप्न अवश्य साकार होंगे।

तुलसी मानस चतुःशती के संदर्भ में तुलसी साहित्य पर पर्याप्त कहा सुना जा रहा है और तुलसी साहित्य को विश्व की विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित करने का प्रयास किया जा रहा है। यह कार्य आवश्यक है, किन्तु साथ ही यह भी आवश्यक है कि इतर प्रान्तीय भाषाओं की रामायण-परंपरा पर भी प्रकाश डाला जाए और उस परंपरा के संदर्भ में तुलसी के मानस का अनुशीलन अपना वैशिष्ठ्य रखता है। किन्तु इस ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। इसलिए

समिति ने यह उचित समझा कि द्रविड भाषाओं में उपलब्ध रामायण परंपरा को प्रकाश में लाया जाए। इसी महत् उद्देश्य को आज इस पुस्तक के रूप में साकार होते देख समिति विशेष आत्मतोष का अनुभव कर रही है। तुलसी मानस चतुःशती समारोह के उपलक्ष्य में समिति ने दिल्ली विश्वविद्यालय के आचार्य डॉ० नगेंद्रजी के भाषण का आयोजन किया। १५ मई १९७४ को आयोजित इस विराट सभा में हैदराबाद–सिकंदराबाद के हिन्दी प्रेमियों तथा विद्वानों की उपस्थिति रही।

हिन्दी काव्यशास्त्र की परंपरा में आचार्य नगेन्द्र का रस सिद्धांत एक नयी उपलब्धि है और ऐसे विशिष्ट ग्रंथ का विभिन्न प्रांतीय भाषाओं में अनुवाद होना चाहिए। समिति के अध्यक्ष डॉ० भीमसेन निर्मल इस दायित्व को निभाने के लिए आगे बढ़े और उसका अनुवाद तेलुगु में किया। उक्त अनुवाद मुद्रण की प्रतीक्षा कर रहा है।

समिति को इस बात में विशेष आनन्द अनुभव होता है कि उसने कई विद्वानों का भव्य स्वागत किया है। इस प्रसंग में डॉ. आई. पाण्डुरंग राव (हिन्दी अधिकारी, संघ लोकसेवा आयोग), डॉ. नरसिंहाचारी, (आचार्य एवं अध्यक्ष, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय) तथा श्री पी. आर. भास्करन नायर (हिन्दी क्षेत्रीय अधिकारी, भारतसरकार) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन महानुभावों ने समिति की विविध गतिविधियों पर हार्दिक प्रसन्नता प्रकट की है।

दक्षिणांचलीय साहित्य समिति के सदस्यों की सृजनात्मक प्रतिभा का इससे परिचय मिलेगा कि इसके सभी सदस्य दो-दो भाषाओं के विद्वान हैं तथा कई कृतियों के कृतिकार हैं। उनका दृष्टिकोण शोध-परक है। डॉ० भीमसेन निर्मल ने तेलुगु के हिन्दी नाटककार पुरुषोत्तम कवि के नाटकों की खोज की तथा हिन्दी क्षेत्र के लिए अज्ञात नाटककार का नाम उजागर किया। डॉ० सीएच. रामुलु ने सूर और पोतना के धार्मिक तत्त्व के तुलनात्मक अध्ययन पर, डॉ० एन. पी. कुट्टनपिल्लै

ने सुमित्रानंदन पंत के काव्य में बिम्ब योजना पर तथा डॉ० गोपाल राव ने जयशंकर प्रसाद तथा पानुगंटि नरसिंहाराव के नाटकों के तुलनात्मक अध्ययन पर शोध-प्रबंध प्रस्तुत किये और पीएच. डी. उपाधि ग्रहण की। श्री एम. बी. वी. आई. आर. शर्मा ने हिन्दी तथा तेलुगु के शतक साहित्य पर तथा श्री वाई. नागेश्वर राव ने हिन्दी तथा तेलुगु के स्वच्छन्दतावादी काव्य पर शोध-प्रबंध प्रस्तुत किये हैं। अन्य सदस्यों में श्री विजयवीर विद्यालंकार, श्रीमती वाई. लक्ष्मीबाई, श्री बी. सायिलु, श्री शंकरय्या शास्त्री, श्री एस वेंकटेश्वरराव, श्री टी. मोहनसिंह आदि भी शोध-कार्य में संलग्न हैं।

समिति को अपने प्रत्येक कार्य में कई महानुभावों का सहयोग प्राप्त होता आ रहा है। समिति उनके प्रति अपना आभार प्रकट करती है।

--:o:--